दृष्टि
The Vision

Quick Book

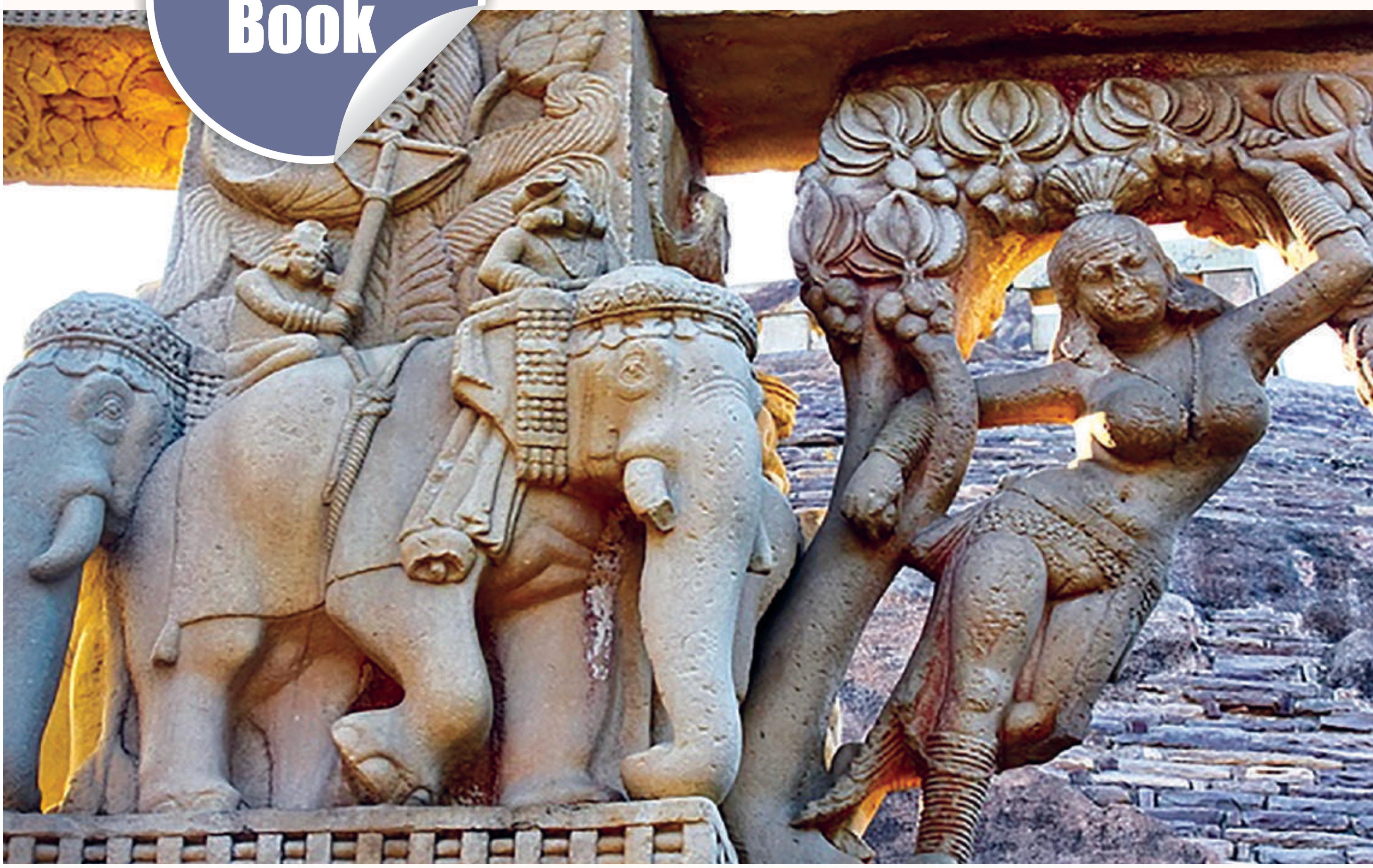

कला एवं संस्कृति

चतुर्थ संस्करण

संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोगों की प्रारंभिक तथा
मुख्य परीक्षाओं के लिये समान रूप से उपयोगी

दृष्टि लर्निंग ऐप पर उपलब्ध प्रमुख कोर्सेज़

IAS Foundation Course

सामान्य अध्ययन

प्रिलिम्स + मेन्स

- 1200+ घंटों की 500+ कक्षाएँ
- सभी टॉपिक के लिये प्रिंटेड नोट्स
- 3 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS Foundation Course

General Studies

Prelims + Mains

- 400+ Classes of 1000+ hrs.
- Printed Notes of All Segments
- Other special facilities for 3 years

IAS Prelims Course

सामान्य अध्ययन

केवल प्रिलिम्स

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'क्विक बुक सीरीज़' की 9 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS + UPPCS + BPSC Optional Subject

हिंदी साहित्य

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

- 400+ घंटों की कक्षाएँ
- पाठ्यक्रम में शामिल सभी पाठ्य-पुस्तकें तथा प्रिंटेड नोट्स
- 145 दैनिक अभ्यास प्रश्न और 18 टेस्ट पेपर (मॉडल उत्तर सहित)

BPSC Prelims Course

बिहार PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'BPSC सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

RAS/RTS Prelims Course

राजस्थान PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'RAS सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

एथिक्स (पेपर-4)

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

- कुल 70 कक्षाएँ
- IAS के साथ-साथ UPPCS के लिये पूर्णतः सटीक
- मूल्यांकन की सुविधा के साथ 6 टेस्ट

निबंध

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

- कुल 13 कक्षाएँ
- IAS के साथ-साथ PCS के लिये पूर्णतः सटीक
- मूल्यांकन की सुविधा के साथ 20 टेस्ट

अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406442 नंबर पर कॉल या वाट्सएप करें

विज़िट करें www.drishtiIAS.com

अपने फोन पर इंस्टॉल करें **Drishti Learning App**

दृष्टि The Vision

कला एवं संस्कृति

चतुर्थ संस्करण

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtiias.com
E-mail : bookstea m@groupdrishti.com

शीर्षक : कला एवं संस्कृति

लेखक : टीम दृष्टि

चतुर्थ संस्करण : जुलाई 2021

मूल्य : ₹ 380

ISBN : 978-93-90955-11-4

प्रकाशक

दृष्टि पब्लिकेशन्स,
(A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.)
641, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।

- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।

- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।

- **© कॉपीराइट :** दृष्टि पब्लिकेशन्स (A Unit of VDK Publications Pvt. Ltd.), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द

प्रिय पाठको,

Quick Book शृंखला की बहुप्रतीक्षित पुस्तकों में से एक 'कला एवं संस्कृति' के चतुर्थ संस्करण को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। ध्यातव्य है कि 'कला एवं संस्कृति' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन 2017 में किया गया था किंतु तब यह Quick Book के रूप में नहीं थी। इसके बाद आप पाठकों की तरफ से अनुरोध आए कि इसे भी 'Quick Book' शृंखला की श्रेणी में ही प्रस्तुत किया जाए। आपके अनुरोधों को सहर्ष स्वीकार करते हुए हमने परीक्षोपयोगी तथ्यों को विश्लेषणात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए इसे Quick Book के रूप में ढाल दिया। इस प्रकार 'कला एवं संस्कृति' Quick Book का प्रथम संस्करण फरवरी 2018 में प्रकाशित हुआ जिसे आप सभी ने काफी सराहा और अपनी प्रतिक्रियाओं के माध्यम से हमारा उत्साह बढ़ाया।

'कला एवं संस्कृति' को अमूमन 'इतिहास' विषय के एक अंग के रूप में देखने की प्रवृत्ति रही है। सिविल सेवा परीक्षा में इससे जुड़े प्रश्नों की तैयारी हेतु अधिकांश अभ्यर्थी इतिहास विषयक पुस्तकों को पढ़कर ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं, किंतु यह प्रवृत्ति भ्रामक है। 'कला एवं संस्कृति' खंड इतिहास के एक तत्त्व के रूप में हो सकता है किंतु बहुत मायनों में यह अपना एक स्वायत्त महत्त्व भी रखता है। सिविल सेवा परीक्षा में इससे जुड़े प्रश्नों की संख्या और अंक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस खंड के प्रश्नों की प्रकृति परखने पर ज्ञात होता है कि इस भाग से न सिर्फ किसी कालखंड विशेष में हुए सांस्कृतिक-कलात्मक विकास से जुड़े प्रश्न आते हैं, बल्कि उसकी अवधारणात्मक समझ से संबंधित प्रश्न भी पूछे जाते हैं; यानी प्रारंभिक और मुख्य दोनों परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्न तथ्यात्मक के साथ-साथ अवधारणात्मक भी होते हैं। कुछ प्रश्न इतिहास से जुड़ते हैं, तो कुछ इतिहास से इतर अपने नैसर्गिक कलात्मक मूल्यों के साथ उपस्थित होते हैं। कुछ प्रश्न प्राचीनता लिये होते हैं, तो कुछ समसामयिकता लिये। इस प्रकार सिविल सेवा परीक्षा के लिये 'कला एवं संस्कृति' की विशिष्टता को सिर्फ इतिहास विषयक किताबों में नहीं समेटा जा सकता। उसमें भी अगर बात भारत जैसे समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और गहरे कलात्मक रुझान वाले देश की हो, तो नि:संदेह यह खंड एक अलग पुस्तक की मांग करता है।

इसके अलावा हिंदी माध्यम में सिविल सेवा की तैयारी करने वाले विद्यार्थियों को अक्सर यह शिकायत रहती है कि सामान्य अध्ययन के इस खंड हेतु कोई विश्वसनीय और उत्कृष्ट पुस्तक नहीं है। यद्यपि 'भारतीय कला एवं संस्कृति' से जुड़ी ढेर सारी पुस्तकें बाज़ार में उपलब्ध हैं किंतु जो वास्तव में उत्कृष्ट हैं वे मूलत: कलात्मक हैं, परीक्षोपयोगी नहीं। इसके अलावा सिविल सेवा की तैयारी हेतु 'कला एवं संस्कृति' विषय पर जो पुस्तकें लिखी गई हैं, उनमें कुछ पुस्तकें ऐसी हैं जिनके पृष्ठ, छपाई, चित्र और प्रस्तुतीकरण शानदार हैं किंतु अध्ययन-सामग्री काफी कमज़ोर है। कुछ किताबों में अध्ययन-सामग्री ठीक-ठाक रहती है लेकिन प्रस्तुतीकरण इतना बेतरतीब होता है कि उसे पढ़ना बहुत ही जटिल और उबाऊ लगता है। कुछ अन्य किताबें और नोट्स भी बाज़ार में धड़ल्ले से बिक रहे हैं जिनमें तर्क नदारद हैं तथा तथ्य संदिग्ध। कुल मिलाकर 'कला एवं संस्कृति' पर विश्वसनीय, पठनीय और सिविल सेवा परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरने वाली उत्कृष्ट पाठ्य-पुस्तक का अभाव रहा है। इन कमियों को दूर करते हुए नए तथ्य-विचार व संभावित परीक्षोपयोगी सामग्रियों को शामिल कर एक उत्कृष्ट पुस्तक का निर्माण करना काफी चुनौतीपूर्ण कार्य था, जिसे हमारी टीम ने स्वीकारा तथा सफलतापूर्वक पूरा किया। इसी का परिणाम है दृष्टि पब्लिकेशन्स से प्रकाशित यह कृति- 'कला एवं संस्कृति'।

'टीम दृष्टि' ने पुस्तक को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाने के लिये NCERT, IGNOU, NIOS की पुस्तकों तथा सरकारी वेबसाइट्स का मूल स्रोत के रूप में उपयोग किया है। पुस्तक को यथासंभव त्रुटिरहित बनाने के लिये प्रस्तुत सामग्री का कई चरणों में सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है। इन सब प्रक्रियाओं के कारण पुस्तक के प्रकाशन की तिथि को निरंतर आगे बढ़ाना पड़ा। वस्तुत: हम बाज़ार के लिये नहीं अपितु विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने के लिये प्रतिबद्ध थे, जिसमें हम काफी हद तक सफल रहे।

बाज़ार में उपलब्ध किताबों से हमारी यह पुस्तक न सिर्फ कथ्य (Content) और शिल्प (Form) में विशिष्ट है, अपितु भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत व गहरे कलात्मक रुझानों को ऐतिहासिक मेधा के साथ-साथ वैज्ञानिक नज़रिये से दर्शाने में भी उत्कृष्ट है। यह पुस्तक इस शैली में तैयार की गई है कि यह संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोगों की प्रारंभिक व मुख्य परीक्षा का संपूर्ण पाठ्यक्रम तो कवर करती ही है, साथ ही सांस्कृतिक अभिरुचि वाले सामान्य पाठकों की कलात्मक क्षुधा को भी शांत कर सकती है। परीक्षा के विषय में समझ विकसित करने के लिये हमने पुस्तक के आरंभ में ही बार ग्राफ भी प्रदर्शित किये हैं जिनमें IAS प्रिलिम्स और मेन्स में विगत वर्षों में कला एवं संस्कृति के विभिन्न टॉपिक्स से पूछे गए प्रश्नों की संख्या को वर्षवार शामिल किया गया है। परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से हमने हर अध्याय के अंत में बुलेट फॉर्म में पूरे अध्याय का सार-संकलन दिया है, जिसे 'स्मरणीय तथ्य' नाम दिया गया है। उसके उपरांत संघ व अन्य लोक सेवा आयोगों में पूछे गए प्रारंभिक और मुख्य परीक्षा के प्रमुख प्रश्नों और उनसे मिलते-जुलते संभावित प्रश्नों को 'अभ्यास प्रश्न' के रूप में रखा गया है, जोकि संपूर्ण अध्याय के अध्ययन के उपरांत आपको स्वयं को जाँचने का अच्छा ज़रिया भी साबित होंगे। संपूर्ण पुस्तक में मुख्य परीक्षा हेतु लगभग 100 परीक्षोपयोगी प्रश्न समाहित हैं जिनके उत्तर लिखने से नि:संदेह विद्यार्थियों को परीक्षा में अत्यंत लाभ होगा। इसके अतिरिक्त भारत का धार्मिक-दार्शनिक, शैक्षणिक-वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास, भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार तथा भारतीय संस्कृति से संबंधित विविध कानून जैसे कई नवीन क्षेत्रों को भी इस पुस्तक में शामिल किया गया है, जिन पर बाज़ार में समुचित सामग्री का अभाव है।

यह मान्य सत्य है कि शब्दों की अपेक्षा चित्रों का प्रभाव मानस-पटल पर कहीं ज़्यादा अंकित होता है, इसलिये पुस्तक में अनेक चित्र दिये गए हैं जो इस पुस्तक का अभिन्न अंग हैं और मूल-पाठ के पूरक हैं। कलाकृतियों (मूर्तियों, मंदिरों, महलों, भवनों आदि) के चित्रों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप बड़ी ही सावधानी से किया गया है ताकि पठनीयता के साथ-साथ रोचकता भी बनी रहे। इस प्रकार पुस्तक के विचार-तथ्य के साथ-साथ उसके प्रस्तुतीकरण, चित्र-संयोजन को भी प्रभावी व आकर्षक बनाने का ख़ास ख़्याल रखा गया है। कहने का तात्पर्य है कि पुस्तक को विश्वसनीयता, पठनीयता, रोचकता व परीक्षोपयोगिता के समस्त मानदंडों पर कसकर तैयार किया गया है, जो इसे बाज़ार में उपलब्ध इस खंड की अब तक की समस्त पुस्तकों से ज़्यादा उत्कृष्ट बनाने में सक्षम है।

अब पुस्तक का चतुर्थ संस्करण पूर्णत: अद्यतित व संशोधित रूप में आपके हाथों में है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह आपकी तैयारी में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। जैसा कि आप जानते हैं कि कोई भी कृति न तो पूर्ण होती है और न ही अंतिम। उसमें परिवर्तन एवं सुधार की संभावना सदैव बनी रहती है। इसलिये आपसे निवेदन है कि आप इस पुस्तक से संबंधित महत्त्वपूर्ण सुझावों व टिप्पणियों से हमें ज़रूर अवगत कराएँ। आप अपनी बात बेझिझक **'8130392355'** नंबर पर वाट्सएप मैसेज के ज़रिये हम तक पहुँचा सकते हैं। आपके सुझावों के आधार पर हम पुस्तक के आगामी संस्करणों को और बेहतर बना सकेंगे।

शुभकामनाओं सहित,

प्रधान संपादक

दृष्टि पब्लिकेशन्स

अनुक्रम

खंड–1

संस्कृति और उसका प्रसार 1–24

1. संस्कृति : एक परिचय 3

- संस्कृति क्या है?
  - संस्कृति के भेद
  - सभ्यता और संस्कृति में अंतर
  - संस्कृति और धर्म
  - भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ
  - भारतीय संस्कृति की निरंतरता के कारण
  - सांस्कृतिक विविधता की चुनौतियाँ
  - भाषावाद

2. भारतीय संस्कृति का प्रसार 12

- भूमिका
  - भारतीय संस्कृति का दूसरे देशों में प्रसार के कारण
  - दक्षिण–पूर्व एशिया व श्रीलंका में भारतीय संस्कृति का प्रसार
  - अंकोरवाट का मंदिर
  - मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति
  - पूर्वी एशियाई देशों में भारतीय संस्कृति
  - भारतीय संस्कृति का अन्य भागों से संबंध
  - भारत–रोम संबंध
  - भारत–अरब संबंध

खंड–2

भारत की दृश्य कलाएँ 25–148

3. भारतीय वास्तुकला 27

- कला क्या है?
- वास्तुकला/स्थापत्यकला
  - सिंधुकालीन स्थापत्य
  - बौद्ध वास्तुकला
  - गुफा स्थापत्य
  - मंदिर स्थापत्य
  - गुजरात का स्थापत्य
  - ओडिशा का स्थापत्य
  - पालकालीन स्थापत्य
  - चालुक्यकालीन स्थापत्य
  - राष्ट्रकूटकालीन स्थापत्य
  - होयसल शासकों का स्थापत्य
  - पल्लवकालीन स्थापत्य
  - चोलकालीन स्थापत्य
  - विजयनगर
  - इंडो–इस्लामिक वास्तुकला
  - खिलजी वास्तुकला
  - तुगलक वास्तुकला
  - सैयद और लोदीकालीन वास्तुकला
  - मध्यकालीन प्रांतीय शैलियों का स्थापत्य
  - अवध/लखनऊ का स्थापत्य
  - सूरी स्थापत्य/अफगान वास्तुकला
  - मध्यकालीन स्थापत्य में क्षेत्रीय राज्यों के योगदान का मूल्यांकन
  - मुगलकालीन स्थापत्य
  - आधुनिक वास्तुकला
  - प्रमुख आधुनिक वास्तुविद्

4. भारतीय मूर्तिकला 73

- भूमिका
  - सिंधु मूर्तिकला
  - बौद्ध मूर्तिकला
  - मौर्य काल में मूर्तिकला
  - प्रथम बुद्ध मूर्ति कहाँ से?

- भारतीय प्रतिमाओं में अंकित मुद्राएँ
- मुद्राओं के प्रकार
- अमरावती मूर्तिकला
- शुंगकालीन मूर्तिकला
- गांधार कला में यूनानी-बैक्ट्रियाई तत्त्व
- गुप्तकालीन मूर्तिकला
- मूर्तिकला के मध्यकालीन पीठ/केंद्र
- मूर्तिकला में आधुनिकता

5. भारतीय चित्रकला **98**

- भूमिका
- भारतीय चित्रकला की विशेषताएँ
  - धार्मिक प्रभाव
  - कल्पनाशीलता
  - रेखाओं की प्रधानता
  - आदर्शवाद
  - प्रतीकात्मकता
  - प्रकृति का चित्रण
  - पात्रविधान
  - मुद्राएँ
  - नामविहीनता
- नियम/सिद्धांत
  - वात्स्यायन का षडंग सिद्धांत
  - प्राचीन स्रोत
- प्रागैतिहासिक चित्रकला
  - भीमबेटका
  - हड़प्पाकालीन चित्रकला
  - संक्रमण काल
  - भित्ति चित्रकला
  - अजंता चित्रकला
- चित्रकारी विधि
  - बोधिसत्व पद्मपाणि
  - बाघ गुफाओं की चित्रकारी
  - बादामी की चित्रकला
  - सित्तनवासल चित्रकला
  - अरमामलाई चित्रकला
  - रावण छाया
  - एलोरा चित्रकारी
  - तंजौर के भित्ति-चित्र
  - लेपाक्षी चित्रकला
  - भित्ति चित्रकला की तकनीक
  - लघु चित्रकारी
  - पाल शैली (11वीं-12वीं शताब्दी)
  - पश्चिमी भारतीय शैली (12वीं-16वीं शताब्दी)
  - 1500-1550 ई. की चित्रकला
- मुगल चित्रकला
  - अकबर
  - जहाँगीरकालीन चित्रकला
  - शाहजहाँकालीन चित्रकला
  - औरंगज़ेबकालीन चित्रकला
  - लोक प्रचलित मुगल चित्रकला
- दक्कन लघु चित्र शैली
  - मध्यकाल में दक्षिण भारत में चित्रकारी
- मध्य भारत और राजस्थानी शैली
  - मालवा शैली
  - मेवाड़ शैली
  - बूंदी शैली
  - कोटा शैली
  - आमेर-जयपुर या ढूंढार शैली
  - मारवाड़ शैली
  - बीकानेर शैली
  - किशनगढ़ शैली
- राजपूत तथा मुगल शैली में अंतर
- पहाड़ी चित्रकला शैली
  - बशोली शैली
  - गुलेर शैली
  - कांगड़ा शैली
  - कुल्लू-मंडी कलम चित्र शैली

- ओडिशा लघु चित्रकला शैली
- लघु चित्रकारी की तकनीक
- आधुनिक काल में चित्रकला
  - कालीघाट के पट्टचित्र
  - ओडिशा के पट्टचित्र
  - नाथद्वारा के पट्टचित्र
  - पटना या कंपनी शैली
  - मधुबनी शैली के चित्र
  - वर्ली चित्रकला
  - कोहबर - सोहराई कला शैली
  - फाड़ चित्र
  - गोंड कला
  - बाटिक प्रिंट
  - बंगाल शैली या ठाकुर शैली के चित्र
  - कलमकारी चित्रकला
- स्वतंत्रता पश्चात् चित्रकला का विकास
- कुछ प्रसिद्ध चित्रकारों का परिचय
  - मीर सैयद अली
  - ख्वाजा अब्दुस्समद शीराज़ी
  - बसावन
  - अबुलहसन
  - मंसूर
  - राजा रवि वर्मा
  - रवींद्रनाथ टैगोर
  - गगनेंद्रनाथ ठाकुर
  - अबनीन्द्रनाथ ठाकुर
  - नंदलाल बोस
  - असित कुमार हालदार
  - अमृता शेरगिल
  - जामिनी रॉय
  - एम.एफ. हुसैन
  - मंजीत बावा
  - सुनील दास
  - बी.सी.सान्याल

6. भारत की हस्तशिल्प एवं वेशभूषा 132

- विभिन्न युगों में हस्तशिल्प की स्थिति
  - प्राचीनकालीन हस्तशिल्प
- ब्रिटिश काल में हस्तशिल्प
- भारत के प्रमुख हस्तशिल्प
  - बाँस हस्तशिल्प
  - काष्ठ हस्तशिल्प
  - शैल शिल्प
  - हाथी दाँत शिल्प
  - हड्डी एवं सींग हस्तशिल्प
  - चटाई एवं टोकरी बुनाई
  - धातु शिल्प
  - ढोकरा हस्तशिल्प
  - मृदा हस्तशिल्प
  - जयपुर के मिट्टी के बर्तन
  - जयपुर की ब्लू पॉटरी (नीले रंग के बर्तन)
  - पॉटरी निर्माण के प्रकार
  - टेराकोटा (आग में पकी हुई मिट्टी)
  - आभूषण
  - आभूषण के प्रकार
  - रॉक हस्तशिल्प
  - कागज़ हस्तशिल्प
  - जूट हस्तशिल्प
  - बेल मेटल हस्तशिल्प
  - मीनाकारी
  - बुनाई एवं कढ़ाई हस्तशिल्प
  - दरी एवं कालीन बुनाई
  - प्रसिद्ध पारंपरिक वस्त्र एवं उनकी निर्माण शैली
- विभिन्न राज्यों में भौगोलिक उपदर्शन (जिओग्राफिकल इंडिकेशन) के रूप में प्रसिद्ध वस्त्रों की सूची
- देश के विभिन्न क्षेत्रों में भौगोलिक उपदर्शन का दर्जा प्राप्त हस्तशिल्प पद्धति
- हस्तशिल्प से संबंधित संस्थाएँ
- हस्तशिल्प संग्रहालय
- हस्तशिल्प से जुड़े व्यक्तित्व

खंड-3

भारत की निष्पादन कलाएँ 149–238

7. भारतीय नृत्य परंपरा 151

- भूमिका
- नटराज-शिव
  - भारत में नृत्य परंपरा
  - भारत में शास्त्रीय नृत्य
  - भरतनाट्यम नृत्य (तमिलनाडु)
  - कथकली नृत्य (केरल)
  - मोहिनीअट्टम नृत्य (केरल)
  - कुचिपुड़ी नृत्य (आंध्र प्रदेश)
- ओडिसी नृत्य (ओडिशा)
- मणिपुरी नृत्य (मणिपुर)
  - मणिपुरी नृत्य के विभिन्न रूप
- कथक नृत्य (उत्तर प्रदेश)
  - कथक के घराने
  - भारत में लोकनृत्य
  - प्रमुख लोकनृत्य
- प्रमुख आधुनिक नृत्य
  - नृत्य से संबंधित ग्रंथ एवं उनके रचयिता
- नृत्य से जुड़े प्रमुख व्यक्तित्व

9. भारतीय संगीत 168

- संगीत की अवधारणा
- संगीत का इतिहास
- भारतीय संगीत की मूल संरचना
  - राग
- संगीत का वर्गीकरण
  - शास्त्रीय संगीत
  - हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत
  - हिंदुस्तानी शैली की विशेषताएँ
  - संगीत में घराना परंपरा
  - कर्नाटक संगीत
  - हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत और कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में समानताएँ
  - हिंदुस्तानी तथा कर्नाटक पद्धति में अंतर
  - उपशास्त्रीय संगीत
  - लोक संगीत
- प्रमुख क्षेत्रीय व जनजातीय संगीत का परिचय
  - रसिया लोकगीत (उत्तर प्रदेश)
  - पंखिड़ा लोकगीत (राजस्थान)
  - लोटिया लोकगीत (राजस्थान)
  - पंडवानी लोकगीत (छत्तीसगढ़)
  - शकुनाखर, मंगलगीत (कुमाऊँ, उत्तराखंड)
  - बारहमासा लोकगीत (कुमाऊँ, उत्तराखंड)
  - आल्हा लोकगीत (उत्तर प्रदेश)
  - होरी लोकगीत (उत्तर प्रदेश)
  - सोहर लोकगीत (उत्तर प्रदेश)
  - छकरी लोकगीत (कश्मीर)
  - लमन लोकगीत (हिमाचल प्रदेश)
  - कजरी लोकगीत (उत्तर प्रदेश)
  - पोवाडा (महाराष्ट्र)
  - तीज गीत (राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश)
  - बुर्राकथा (आंध्र प्रदेश, तेलंगाना)
  - भाखा (जम्मू और कश्मीर)
  - भूता गीत (केरल)
  - दसकठिया (ओडिशा)
  - बिहू लोकगीत (असम)
  - साना लामोक लोकगीत (मणिपुर)
  - लाई हाराओबा त्योहार के गीत (मणिपुर)
  - खोंगजॉम परबा गाथागीत
  - साईकुती ज़ई या साईकुती के गीत (मिज़ोरम)
  - चाई हिआ या चाई नृत्य के गीत (मिज़ोरम)
  - बसंती/बसंत गीत (गढ़वाल, उत्तराखंड)
  - घसियारी लोकगीत (गढ़वाल, उत्तराखंड)

- विल्लु पत्तु 'धनुष गीत' (तमिलनाडु)
- अम्मानईवारी लोकगीत (तमिलनाडु)

- विभिन्न राज्यों के लोकगीत
  - राजस्थानी लोकगीत
  - ब्रज के लोकगीत
  - रुहेलखंड के लोकगीत
  - छत्तीसगढ़ के लोकगीत
  - गोंड जनजाति के लोकगीत
  - बुंदेलखंडी लोकगीत
  - अवधी और भोजपुरी लोकगीत
  - मैथिली लोकगीत
  - उत्तराखंड के लोकगीत
- भारतीय संगीत के प्रमुख वाद्यों का परिचय
  - वाद्य-यंत्र
  - प्रमुख वाद्य-यंत्रों का परिचय
- संगीत जगत के प्रमुख व्यक्तित्व
  - जयदेव
  - अमीर ख़ुसरो (1253–1325 ई.)
  - स्वामी हरिदास
  - तानसेन
  - अन्नमाचार्य
  - त्यागराज
  - महाराज स्वाति तिरूनल राम वर्मा
  - विष्णु दिगंबर पलुस्कर
  - पंडित विष्णु नारायण भातखंडे
  - बैजू बावरा
  - उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ाँ
  - पंडित रवि शंकर
  - पंडित भीमसेन जोशी
  - पंडित जसराज
- आधुनिक भारतीय संगीत
  - रॉक
  - जैज़
  - पॉप म्यूज़िक
  - भारतीय ऑर्केस्ट्रा
- प्रमुख संगीत संस्थाएँ एवं संस्थान

9. भारत में रंगमंच कला 192

- भूमिका
  - रंगमंच से तात्पर्य
- भारतीय रंगमंच के मूल स्रोत एवं स्वरूप
  - संस्कृत रंगमंच
  - प्राचीन काल के मुख्य नाट्यकार
  - लोक रंगमंच
- औपनिवेशिक काल में भारतीय रंगमंच
  - पारसी रंगमंच
  - बांग्ला, मराठी एवं हिंदी रंगमंच
  - भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा)
  - स्वातंत्र्योत्तर भारत में रंगमंच
  - हिंदी रंगमंच और नाटक परंपरा
  - नुक्कड़ नाटक
  - भारत में महिला थियेटर का उदय
  - रेडियो थियेटर
  - वर्तमान में भारतीय रंगमंच की समस्याएँ
  - प्रमुख लोकनाट्य
  - वीरगासे
  - पोवाड़ा
  - दसकथिया एवं विलपट्टू
  - कुछ अन्य लोकनाट्य
  - कठपुतली कला
  - दस्ताना कठपुतली
  - छड़ कठपुतली
  - छाया कठपुतली (आंध्र प्रदेश)
  - धागा कठपुतली
- सर्कस
  - भारत के कुछ प्रमुख सर्कस
- प्रमुख आधुनिक नाटककार
  - बादल सरकार
  - विजय तेंदुलकर
  - गिरीश रघुनाथ कर्नाड

- मोहन राकेश
- बिजॉन भट्टाचार्य
- माइकल मधुसूदन दत्त
- हबीब तनवीर
- महेश एल्कुंचवार
- ओम शिवपुरी
- रतन थियम
- सफदर हाशमी
- इब्राहिम अल्काज़ी
- अमाल अल्लाना
- ऊषा गांगुली
- सुरेंद्र वर्मा
- बी.वी. कारंत
- भीष्म साहनी
- सौमित्र चटर्जी

10. भारतीय सिनेमा **212**

- संक्षिप्त परिचय
- सिनेमा का इतिहास
  - भारत में मूक फिल्मों का युग **(1896–1930)**
  - बोलती फिल्मों का दौर
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और सिनेमा
- हिंदी साहित्य और सिनेमा
- हिंदी सिनेमा पर उर्दू का प्रभाव
- हिंदी सिनेमा का विकास
- कला सिनेमा
- प्रादेशिक सिनेमा
  - गुजराती सिनेमा
  - मराठी सिनेमा
  - बांग्ला सिनेमा
  - तेलुगू सिनेमा
  - मलयालम सिनेमा
  - कन्नड़ सिनेमा
  - तमिल सिनेमा
  - ओडिया सिनेमा
  - पंजाबी सिनेमा
  - असमिया सिनेमा
  - भोजपुरी सिनेमा
- भारतीय सिनेमेटोग्राफ अधिनियम, 1952
- भारत में सेंसरशिप
- फिल्म पुरस्कार
  - फिल्मफेयर अवॉर्ड
  - आइफा अवॉर्ड
  - राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार
  - दादा साहेब फाल्के लाइफटाइम अचीवमेंट अवॉर्ड
- फिल्म उद्योग से संबंधित प्रमुख संस्थान एवं संगठन
  - भारतीय फिल्म और टेलीविज़न संस्थान पुणे
  - केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड
  - राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार
  - राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम
  - भारतीय बाल फिल्म समिति
  - फिल्म प्रभाग
  - सत्यजीत रे फिल्म एवं टेलीविज़न संस्थान
- भारतीय सिनेमा के अन्य तत्त्व
  - शिक्षा पर आधारित प्रमुख फिल्में
  - हिंसा पर आधारित प्रमुख फिल्में
  - सनसनी, सेक्स पर आधारित प्रमुख फिल्में
  - खेल पर आधारित प्रमुख फिल्में
  - एनीमेशन आधारित फिल्में
  - देश-भक्ति से जुड़ी प्रमुख फिल्में

11. भारत की परंपरागत युद्धकला एवं खेल **232**

- भारत में युद्धकला
  - कलारिपयट्टू
  - सिलांबम
  - मर्दानी खेल
  - थांग-टा और सारित-साराक
  - ठोडा
  - मुष्टि युद्धकला
  - पारीकदा
  - कथी सामू
  - गतका

- छीबी गद-गा
- पाईका अखाड़ा
- खेल
  - युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय
  - भारतीय खेल प्राधिकरण
  - राष्ट्रीय स्तर के खेल संस्थान
  - खेल शिक्षा एवं प्रशिक्षण देने वाले अन्य संस्थान
- सरकार द्वारा स्थापित खेल पुरस्कार
  - राजीव गांधी खेल रत्न
  - द्रोणाचार्य पुरस्कार
  - अर्जुन पुरस्कार
  - ध्यानचंद लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार
  - मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ट्रॉफी
  - राष्ट्रीय खेल प्रोत्साहन पुरस्कार
- भारतीय परंपरागत खेलों का परिचय
  - शतरंज
  - तीरंदाज़ी
  - कुश्ती
  - गिल्ली-डंडा
  - खो-खो
  - पचीसी/चौसर/चौपड़
  - कबड्डी
  - असोल आप और असोल ताले आप
  - धोपखेल
  - वल्लमकली
  - गेल्ला-छूट
  - हियांग तन्नाबा
  - कंग शनाबा
  - इन्सुकनावर
  - खोंग खांजेई
  - मल्लखंभ
- अन्य प्रमुख खेल
  - मिज़ो इंचाई
  - होले त्सो डुकानाराम
  - हीनम तुरनाम
  - पोरोक-पामिन सिनम
  - मुकना
  - इनबुआन
  - थ्वांगमुंग
  - सागोल खांजेई
  - यूबी-लाकपी
  - जल्लीकट्टू
  - पोथू पोट्टू मटसारम

खंड-4

भारत की भाषाएँ, साहित्य, धर्म तथा दर्शन ..... 239 – 294

12. भारतीय भाषाएँ एवं लिपियाँ 241

- भूमिका
- भारत के भाषायी परिवार
- भाषा और लिपि
- भाषा और लिपि में अंतर
- भारत की शास्त्रीय भाषाएँ
- भारतीय भाषाओं के लिये वैधानिक प्रावधान
- जनगणना में भाषायी स्थिति

13. भारत की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ 253

- भूमिका
- प्राचीन काल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
- लौकिक साहित्य
- वैज्ञानिक साहित्य
- पालि एवं प्राकृत साहित्य
- द्रविड़ साहित्य
- मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
- आधुनिक भारतीय साहित्य
- भारतीय स्वच्छंदतावाद

- गांधीवाद का भारतीय साहित्य पर प्रभाव
- प्रगतिशील साहित्य
- आधुनिक रंगशाला का निर्माण
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परिदृश्य

14. धर्म एवं दर्शन 270

- भूमिका
- धर्म
- दर्शन
- धर्म के विविध प्रकार
- हिंदू धर्म
- हिंदू धर्म का विकास (प्राचीन काल से वर्तमान तक)
  - वैदिक-पूर्व काल
  - वैदिक युग
- वैदिकोत्तर काल
  - वैष्णव भागवत धर्म
  - शैव धर्म
  - शाक्त धर्म
  - मध्यकाल का भक्ति आंदोलन
- आधुनिक काल में धार्मिक सुधार आंदोलन
  - ब्रह्म समाज
  - प्रार्थना समाज
  - आर्य समाज
  - रामकृष्ण मिशन
  - थियोसोफिकल सोसायटी
  - मंदिर प्रवेश आंदोलन
- बौद्ध धर्म
- बुद्ध के महापरिनिर्वाण उपरांत बौद्ध धर्म
  - बौद्ध संगीति
  - हीनयान और महायान संप्रदाय
- जैन धर्म
  - वर्धमान महावीर
  - जैन दर्शन
  - जैन धर्म का प्रसार
- आजीवक संप्रदाय
- इस्लाम धर्म
- यहूदी धर्म
  - भारत में यहूदी समाज
- ईसाई धर्म
- पारसी धर्म
- सिख धर्म
- बहाई धर्म
- सरना धर्म
- दर्शन
  - भारतीय दर्शन की विशेषताएँ
  - चार्वाक दर्शन
  - सांख्य दर्शन
- आधुनिक भारत के कुछ प्रसिद्ध दार्शनिक/विचारक
  - महर्षि अरविंद
  - महात्मा गांधी
  - रवींद्रनाथ टैगोर
  - सर्वपल्ली राधाकृष्णन
  - स्वामी विवेकानंद

खंड-5

भारत में शैक्षणिक एवं तकनीकी विकास .... 295 – 326

15. भारत में शिक्षा 297

- भूमिका
- प्राचीन युग में शिक्षा
  - वैदिककालीन शिक्षा
  - छठी शताब्दी ईसा पूर्व के उत्तरार्द्ध में शिक्षा
  - प्राचीन शिक्षा की विषयवस्तु
  - मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली
  - मध्यकालीन शिक्षा व्यवस्था एवं सल्तनत काल
  - मुगलकालीन शिक्षा में शासकों का योगदान
  - आधुनिक काल में शिक्षा का विकास
  - परतंत्र भारत में विभिन्न शिक्षा आयोग एवं शिक्षा की वस्तुस्थिति

- राष्ट्रीय जागरण के काल में स्थापित शिक्षण संस्थाएँ
  - 1913 का शिक्षा संबंधी घोषणा-पत्र
  - स्वतंत्र भारत में स्थापित किये गए विभिन्न शिक्षा आयोग
  - मुदालियर आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग)
  - विभिन्न युगों में नारी शिक्षा की स्थिति

16. भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास 311

- भूमिका
- प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
  - प्राचीन काल में भारत में विज्ञान एवं तकनीक के विभिन्न क्षेत्रों का खंडवार विश्लेषण
  - प्राचीन भारत के प्रमुख वैज्ञानिक
  - प्राचीन भारत के कुछ प्रमुख ग्रंथ
  - मध्यकालीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
  - आधुनिक भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
  - अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी
  - आधुनिक भारत के प्रमुख वैज्ञानिक
  - विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबद्ध प्रमुख स्वायत्त संस्थान

खंड-6

विविध 327–381

17. भारत के मेले एवं त्योहार 329

- भूमिका
- राष्ट्रीय पर्व
  - गणतंत्र दिवस
  - स्वतंत्रता दिवस
  - गांधी जयंती
- धार्मिक पर्व
  - हिंदू त्योहार
  - मुस्लिम त्योहार
  - ईसाई त्योहार
  - सिख त्योहार
  - जैन त्योहार
  - बौद्ध पर्व
  - पारसी त्योहार
  - यहूदी पर्व
  - उत्तर भारतीय त्योहार
- दक्षिण भारतीय पर्व
  - पोंगल
  - ओणम
  - अत्तुवेला महोत्सवम्
  - चेट्टिकुलंगर भरणि
  - कोडुंगल्लूर भरणि
  - ताइपूय महोत्सवम्, हरिप्पाड, अलप्पुझा जिला
  - परुमल पेरुन्नाल, पत्तनमतिट्टा ज़िला
  - कांजिरमट्टम कोडिकुत्तु, एर्नाकुलम
  - कल्पथी रथोल्सवम्, पलक्कड
  - पट्टाम्बी नेर्चा
  - पुलीकली
  - पूरम पर्व
  - चंपकुलम नौका दौड़, अलप्पुझा
  - नेहरू ट्रॉफी नौका दौड़
  - अरन्मुला वल्लमकली या सर्प नौका दौड़
  - पायिप्पड़ नौका दौड़, अलप्पुझा
  - विशु
  - उंजल पर्व
  - चिथिरई पर्व
  - थाईपुसम
  - उगादी
  - बोठुकम्मा/बतुकम्मा
  - कंबाला
- पूर्वोत्तर भारत के पर्व
  - लोसरहॉर्नबिल महोत्सव
  - लोसूंग/लोसांग
  - सागा दावा
  - बिहू

- अंबुबाची मेला
- खर्ची पूजा
- साजीबू चेइराओबा
- वान्गाला पर्व
- कांग चिंग्बा
- सेक्रेन्यी पर्व
- मोअत्सु
- लुई-नगाई-नी
- ड्री
- अंथुरियम महोत्सव
- नोंगक्रेम नृत्य उत्सव
- चपचार कूट
- पचूल
- ब्रह्मोत्सव हेमिस महोत्सव

● सांस्कृतिक महोत्सव
- कोणार्क नृत्य महोत्सव
- मोढेरा नृत्य महोत्सव
- जयपुर साहित्य महोत्सव
- काला घोड़ा कला महोत्सव
- भारत रंग महोत्सव
- बाल संगम
- पूर्वोत्तर नाट्य समारोह
- ताज महोत्सव
- भारतीय अंतर्राष्ट्रीय बाल फिल्म समारोह
- अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव
- त्यागराज संगीत महोत्सव
- लुंबिनी महोत्सव
- हम्पी महोत्सव
- माउंट आबू महोत्सव
- खजुराहो नृत्य महोत्सव
- गंगा महोत्सव
- नाट्यांजलि महोत्सव
- किला रायपुर खेल महोत्सव
- मामल्लपुरम नृत्य महोत्सव
- रण उत्सव

● मेले
- गंगासागर मेला
- पौष मेला
- तरनेतर मेला
- सोनपुर मेला
- पुष्कर मेला
- अम्बुबाची मेला
- सूरजकुंड मेला
- खीर भवानी मेला
- कुंभ मेला

18. भारत के सांस्कृतिक संस्थान 349

● भूमिका
- महत्त्वपूर्ण संस्थान

19. भारत में यूनेस्को की सांस्कृतिक धरोहर 357

● विश्व विरासत

● संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन
- महासम्मेलन
- कार्यकारी बोर्ड
- सचिवालय

● भारत के विश्व विरासत स्थल
- सांस्कृतिक स्थल
- प्राकृतिक विरासत स्थल
- मिश्रित विरासत स्थल
- भारतीय विश्व विरासत स्थलों की सूची

● अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर
- रामलीला
- वैदिक मंत्रों का पाठ करने की परंपरा
- कुडियाट्टम
- रम्माण
- मुडियेट्टु
- कालबेलिया
- छऊ नृत्य
- बौद्ध धर्म ग्रंथों का पाठ करने की परंपरा
- संकीर्तन

- पंजाब का धातु हस्तशिल्प
- योग
- नवरोज़
- कुंभ मेला

● विश्व स्मृति रजिस्टर
- डच ईस्ट इंडिया कंपनी के अभिलेख
- विमलप्रभा
- ऋग्वेद
- पुदुच्चेरी में संगृहीत शैव पांडुलिपि
- शांतिनाथ चरित्र
- तारीख-ए-खानदान-ए-तैमूरिया
- द आई.ए.एस. (द इंस्टीट्यूट ऑफ एशियन स्टडीज़) में संगृहीत तमिल चिकित्सा पांडुलिपि
- गिलगित पांडुलिपियाँ
- मैत्रेयव्याकरण

20. भारतीय संस्कृति संबंधित विविध कानून 369

● भूमिका
- संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार

21. सम्मान एवं पुरस्कार 371

● भूमिका

● भारत रत्न
- पद्म अलंकरण
- संगीत नाटक अकादमी रत्न एवं अकादमी पुरस्कार
- ललित कला अकादमी फेलोशिप
- साहित्य अकादमी द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार
- राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार
- अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव पुरस्कार
- भारतीय अंतर्राष्ट्रीय बाल फिल्म समारोह: गोल्डन एलिफेंट पुरस्कार
- ज्ञानपीठ पुरस्कार
- मूर्तिदेवी पुरस्कार
- के.के. बिड़ला फाउंडेशन पुरस्कार
- सांस्कृतिक सद्भाव हेतु टैगोर पुरस्कार
- गांधी शांति सम्मान
- अंतर्राष्ट्रीय समझ के लिये जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार
- शांति, नि:शस्त्रीकरण और विकास के लिये इंदिरा गांधी पुरस्कार
- मैन बुकर पुरस्कार
- मैन बुकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार
- पुलित्जर पुरस्कार
- नोबेल पुरस्कार
- नोबेल पुरस्कार जीतने वाले भारतीय व्यक्तित्व

22. कैलेंडर एवं पंचांग 377

● भूमिका
- भूमध्यरेखा
- क्रांतिवृत्त या सूर्यपथ
- विषुव
- खगोलीय गोला
- अयनांत
- पुरस्सरण या अयनांश
- खगोलीय भूमध्यरेखा

● विश्व में कैलेंडर निर्माण के आधार
- सौर कैलेंडर
- चंद्र कैलेंडर
- चंद्र-सौर कैलेंडर

● भारतीय कैलेंडर में विभिन्न मास
- सौर मास
- चंद्र मास

● हिंदू पंचांग
- तिथि
- नक्षत्र
- वार
- योग
- करण

● भारतीय कैलेंडर के रूपों का वर्गीकरण
- ग्रेगोरियन कैलेंडर
- विक्रम संवत्
- शक संवत्
- हिजरी कैलेंडर
- भारत का राष्ट्रीय कैलेंडर

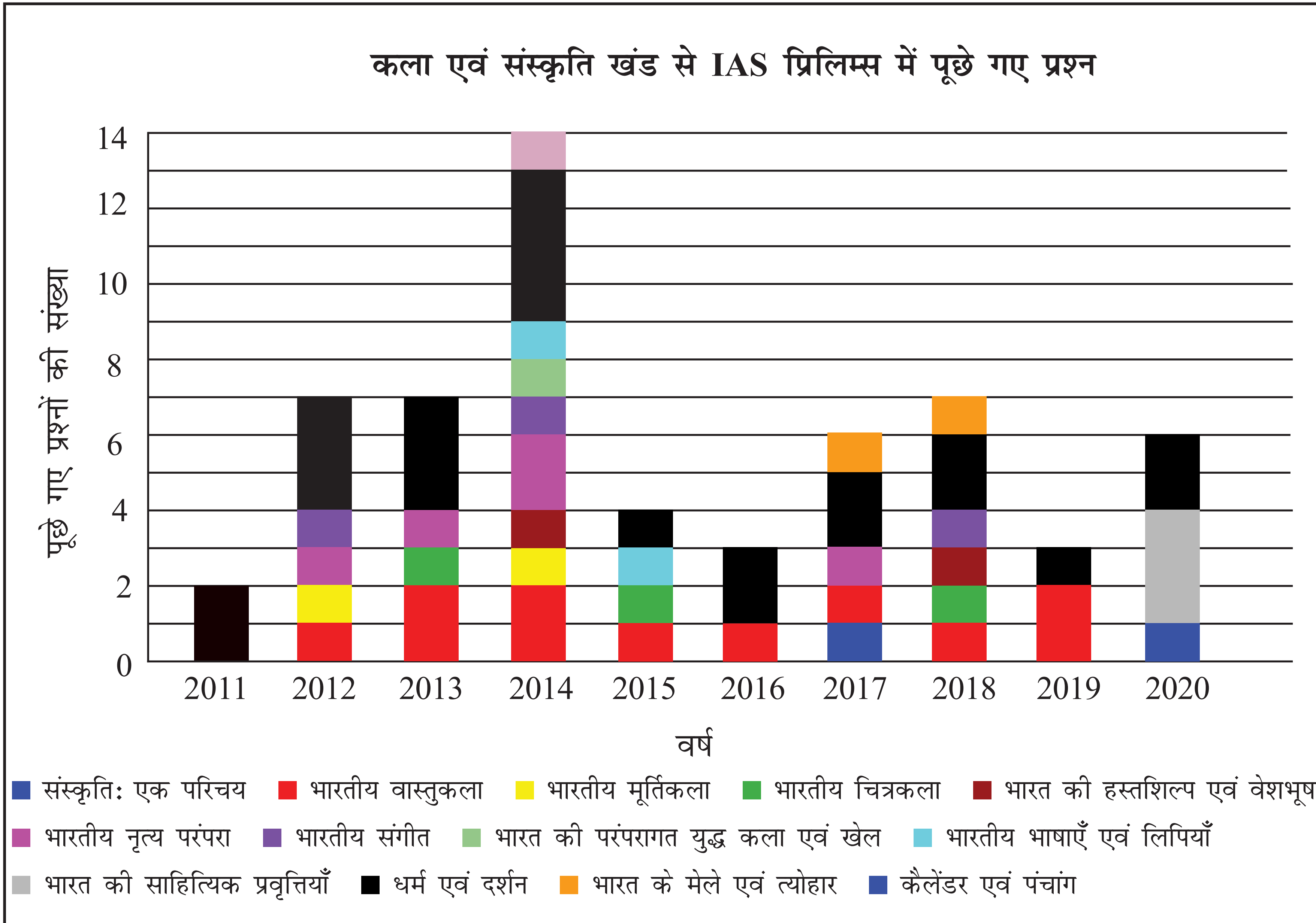
कला एवं संस्कृति खंड से IAS प्रिलिम्स में पूछे गए प्रश्न
पूछे गए प्रश्नों की संख्या
0
2
4
6
8
10
12
14
2011
2012
2013
2014
2015
2016
2017
2018
2019
2020
वर्ष
संस्कृति: एक परिचय
भारतीय वास्तुकला
भारतीय मूर्तिकला
भारतीय चित्रकला
भारत की हस्तशिल्प एवं वेशभूषा
भारतीय नृत्य परंपरा
भारतीय संगीत
भारत की परंपरागत युद्ध कला एवं खेल
भारतीय भाषाएँ एवं लिपियाँ
भारत की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
धर्म एवं दर्शन
भारत के मेले एवं त्योहार
कैलेंडर एवं पंचांग

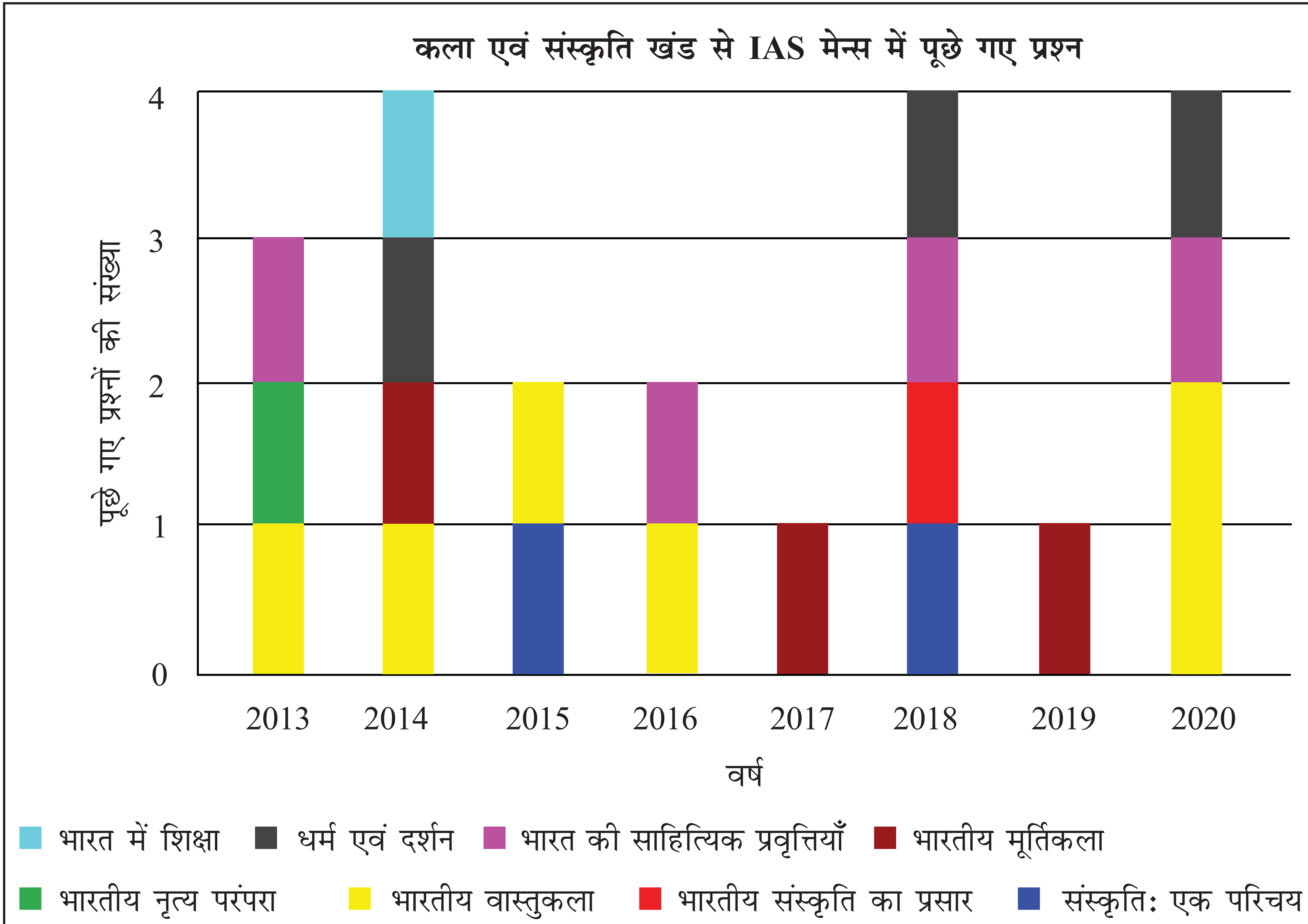
कला एवं संस्कृति खंड से IAS मेन्स में पूछे गए प्रश्न
पूछे गए प्रश्नों की संख्या
0
1
2
3
4
2013
2014
2015
2016
2017
2018
2019
2020
वर्ष
भारत में शिक्षा
धर्म एवं दर्शन
भारत की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
भारतीय मूर्तिकला
भारतीय नृत्य परंपरा
भारतीय वास्तुकला
भारतीय संस्कृति का प्रसार
संस्कृतिः एक परिचय

खंड 1

संस्कृति और उसका प्रसार

- संस्कृति : एक परिचय
- भारतीय संस्कृति का प्रसार

1

संस्कृति : एक परिचय
(Culture : An Introduction)

संस्कृति क्या है?

संस्कृति समाज और जीवन के विकास के मूल्यों की सम्यक् संरचना है। यह समाज में अंतर्निहित गुणों और उच्चतम आदर्शों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने-विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है।

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से है। संस्कृति किसी समाज में पाए जाने वाले, उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाज़ों, चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन और आचरण के साथ-साथ उनके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है। अंग्रेज़ी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' (Culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- विकसित करना या परिष्कृत करना। संक्षेप में 'संस्कृति' अपनी बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थितियों को निरंतर सुधारती और उन्नत करती रहती है। ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और वह आविष्कार, जिससे मनुष्य के जीवन स्तर में बदलाव होता है और वह विचारों से पहले की अपेक्षा ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, संस्कृति का ही अंग है। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसमें हम सकारात्मक दिशा में सोचते और कार्य करते हैं।

संस्कृति के भेद

1. भौतिक 2. अभौतिक

1. भौतिक संस्कृति के अंतर्गत प्रौद्योगिकी, कला के विभिन्न रूप, वास्तुकला, भौतिक वस्तुएँ और घरेलू प्रयोग के सामान, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य, युद्ध एवं अन्य सामाजिक कार्यकलाप आदि शामिल हैं।
2. अभौतिक संस्कृति से साहित्यिक, दार्शनिक एवं बौद्धिक परंपराओं, विश्वासों, मिथकों, दंत कथाओं तथा आदर्शों, भावनाओं और वाचिक परंपराओं का बोध होता है।

व्यापक अर्थों में संस्कृति एक संश्लिष्ट समुच्चय है, जिसमें सभ्यता के विविध आयाम दिखते हैं।

जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, *"संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती, परंतु संस्कृति के लक्षण देखे जा सकते हैं। हर जाति अपनी संस्कृति को विशिष्ट मानती है। संस्कृति एक अनवरत मूल्यधारा है। यह जातियों के आत्मबोध से शुरू होती है। इस मुख्यधारा में संस्कृति की दूसरी धाराएँ मिलती जाती हैं तथा उनका समन्वय होता जाता है। इसलिये किसी जाति या देश की संस्कृति उसी मूल रूप में नहीं रहती, बल्कि समन्वय से वह और अधिक संपन्न तथा व्यापक हो जाती है।"*

संस्कृति के भाग

कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति को लक्षणों से तो जान सकते हैं, किंतु इसे स्पष्टतया परिभाषित करना संभव नहीं। वास्तव में मानव द्वारा अप्रभावित प्राकृतिक शक्तियों को छोड़कर जितनी भी मानवीय परिस्थितियाँ हमें प्रभावित करती हैं, उन सभी की संपूर्णता को संस्कृति कहते हैं।

जब भी 'संस्कृति' की बात होती है तो अनायास ही 'सभ्यता' की चर्चा भी आवश्यक जान पड़ती है। हालाँकि 'संस्कृति' व 'सभ्यता' शब्द प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, फिर भी दोनों के अर्थ अलग-अलग हैं। दरअसल, सभ्यता वह है जो हमारे पास है, जबकि संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। बंगला, गाड़ी, सड़क, हवाई जहाज़, पोशाक और भोजन आदि स्थूल वस्तुएँ सभ्यता की सूचक हैं। मगर, पोशाक पहनने और भोजन करने के तरीके संस्कृति के अंग हैं। इसी प्रकार, मोटर बनाने और उसका उपयोग करने, महलों के निर्माण में रुचि का परिचय देने और सड़कों तथा हवाई जहाज़ों की रचना में जो ज्ञान लगता है, उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करती है। अतः सभ्यता बाह्य रूप से दृष्टिगोचर होने वाली मानवीय उपलब्धि है, जबकि संस्कृति मनुष्य की आंतरिक कलात्मक अभिरुचि या आदत है अर्थात् सभ्यता में भौतिक पक्ष प्रधान है, जबकि संस्कृति में वैचारिक पक्ष प्रबल होता है।

सभ्यता और संस्कृति में अंतर

सभ्यता और संस्कृति इतिहास के केंद्रीय विषय हैं। इसलिये इनके अंतर और साम्य को समझना भी ज़रूरी है। मनुष्य इतिहास का आधार है तथा प्रकृति का दोहन, शोधन व अनुकरण मानव सभ्यता के विकास की जड़ में स्थित है।

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
   1. संस्कृति का अस्तित्व निर्गमन की निरंतरता पर निर्भर होता है।
   2. सामाजिक व्यवहार एक पीढ़ी-से-दूसरी पीढ़ी में निर्गमित होते हैं।
   3. संस्कृति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित की जाती है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 1 और 2
   (c) केवल 1 और 3 (d) 1, 2 और 3

4. निम्नलिखित में से सही कथन चुनिये:
   (a) संस्कृति सदैव आगे बढ़ती है, परंतु सभ्यता नहीं।
   (b) संस्कृति की माप का एक निश्चित मापदंड होता है,जबकि सभ्यता का नहीं।
   (c) संस्कृति बिना प्रयत्न के हस्तांतरित होती है, किंतु सभ्यता नहीं।
   (d) सभ्यता वह है, जो हम बनाते हैं; जबकि संस्कृति वह है, जो हम हैं।

5. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन असत्य है?
   (a) सहिष्णुता भारतीय संस्कृति को स्थायित्व प्रदान करती है।
   (b) भारतीय संस्कृति रोम तथा यूनानी संस्कृति के समकालीन है।
   (c) भारतीय संस्कृति में समन्वय की प्रक्रिया विद्यमान है।
   (d) आध्यात्मिकता तथा भौतिकता का समन्वय भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान है।

6. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?
   (a) सभ्यता में परिवर्तन व सुधार संस्कृति की अपेक्षा ज़्यादा कठिन है।
   (b) सभ्यता अमूर्त है, जबकि संस्कृति मूर्त है।
   (c) सभ्यता साधन है, जबकि संस्कृति साध्य है।
   (d) सभ्यता आंतरिक है जबकि संस्कृति बाह्य है।

7. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य नहीं है?
   (a) संस्कृति सामाजिक नियंत्रण में बाधा डालती है।
   (b) संस्कृति व्यवहारों में एकरूपता लाती है।
   (c) संस्कृति मानव को मूल्य एवं आदर्श प्रदान करती है।
   (d) संस्कृति समाजीकरण में योगदान देती है।

8. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है?
   (a) संस्कृति मनुष्य के सभी समाजों की एक सार्वभौमिक विशेषता नहीं है।
   (b) व्यक्ति उच्च बुद्धिमत्ता के आधार पर संस्कृति को बिना सीखे प्राप्त कर सकता है।
   (c) मनुष्यों का व्यवहार उस संस्कृति से निर्धारित होता है, जिससे वे संबंधित होते हैं।
   (d) पशुओं की अपने-अपने समाजों में संस्कृति होती है।

9. सुमेलित करें–

A. डिस्कवरी ऑफ इंडिया	1. आबिद हुसैन
B. हिंदू वे ऑफ लाइफ	2. रामधारी सिंह दिनकर
C. संस्कृति के चार अध्याय	3. जवाहरलाल नेहरू
D. नेशनल कल्चर ऑफ इंडिया	4. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

कूट:

	A	B	C	D
(a)	3	1	2	4
(b)	4	3	2	1
(c)	3	4	2	1
(d)	1	3	2	4

10. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?
    (a) संस्कृति मनुष्य की विभिन्न क्षेत्रों में श्रेष्ठ साधनाओं एवं सम्यक् चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है।
    (b) संस्कृति का अर्थ मानव का आंतरिक विकास है।
    (c) सभ्यता सूक्ष्म होती है, जबकि संस्कृति स्थूल।
    (d) सांस्कृतिक मापदंड अस्थिरता की ओर उन्मुख होते हैं।

11. भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं के संदर्भ में विचार कीजिये:
    1. प्राचीनता 2. निरंतरता
    3. अनेकता में एकता 4. राष्ट्रीयता

    उपर्युक्त में से कौन-सा/से विकल्प सत्य है/हैं?
    (a) केवल 1 (b) केवल 2 और 3
    (c) केवल 1, 2 और 3 (d) उपर्युक्त सभी

12. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिये:
    1. भारतीय संस्कृति धर्म-आधारित है।
    2. धर्म और संस्कृति में कभी टकराव नहीं होता।
    3. सांस्कृतिक इतिहास में धर्म एक स्तरमात्र है।
    4. धर्मविहीन संस्कृति, संस्कृति नहीं, बल्कि प्रतिक्रियावादी विकृति होती है।

    उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
    (a) केवल 1
    (b) केवल 4
    (c) केवल 1 और 2
    (d) केवल 1 और 3

13. सांस्कृतिक विरासत के संदर्भ में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
    (a) संस्कृति के वे सभी पक्ष या मूल्य, जो मानव को उनके पूर्वजों द्वारा हस्तांतरित किये जाते हैं।
    (b) सांस्कृतिक-प्रतिमान, जो एक व्यक्ति उस विशिष्ट समूह से प्राप्त करता है, जिसका कि वह एक सदस्य है।
    (c) समूह अनुभव, जो व्यक्ति एक विशिष्ट समूह से, जिसका कि वह एक सदस्य है, से प्राप्त करता है।
    (d) उपर्युक्त सभी।

14. सांस्कृतिक विभिन्नीकरण के संदर्भ में निम्नलिखित में से क्या सत्य है?
    (a) एक ही देश में पाई जाने वाली भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का प्रदर्शन।
    (b) अलग-अलग संस्कृतियों का विभेदन।
    (c) वैश्वीकरण के प्रभाव से अलग और विशिष्ट संस्कृति का उभरना, जैसे-हिंग्लिश कल्चर।
    (d) सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता का प्रयास।

15. **कथन (A):** संस्कृति मनुष्य के समष्टिगत दृष्टिकोण की अभिव्यंजना है।

    कारण (R): मनुष्य जैसे ही अपने प्रयासों से ईश्वर द्वारा प्रदान की गई विरासत से परे जाता है, वैसे ही संस्कृति की शुरुआत होती है।

    निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुनें-
    (a) (A) और (R) दोनों सत्य हैं तथा (R), (A) की सही व्याख्या करता है।
    (b) (A) और (R) दोनों सत्य हैं, किंतु (R), (A) की सही व्याख्या नहीं करता है।
    (c) (A) सत्य है, लेकिन (R) असत्य है।
    (d) (A) असत्य है, लेकिन (R) सत्य है।

उत्तरमाला

1. (d)	2. (d)	3. (d)	4. (d)	5. (b)
6. (c)	7. (a)	8. (c)	9. (c)	10. (b)
11. (c)	12. (d)	13. (a)	14. (c)	15. (b)

अभ्यास प्रश्न (मुख्य परीक्षा)

1. "भारत की प्राचीन सभ्यता, मिस्र, मेसोपोटामिया और ग्रीस की सभ्यताओं से, इस बात में भिन्न है कि भारतीय उपमहाद्वीप की परंपराएँ आज तक भंग हुए बिना परिरक्षित की गई हैं।" टिप्पणी कीजिये। *IAS, 2015*
2. संस्कृतीकरण और सांस्कृतिक भिन्नता के अंतर को स्पष्ट करते हुए बताएँ कि भारतीय संस्कृति किस ओर ज़्यादा उन्मुख रही है?
3. सभ्यताएँ जब विकसित होती हैं तो संस्कृतियाँ पतनशीलता की ओर बढ़ जाती हैं। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? टिप्पणी करें।
4. वैश्वीकरण का भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा? टिप्पणी कीजिये।
5. धर्म और संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध है। आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।
6. राज्य अक्सर सांस्कृतिक विविधता के बारे में शंकालु क्यों होते हैं? विवेचना कीजिये।
7. सांस्कृतिक विविधता का क्या अर्थ है? भारत को एक अत्यंत विविधतापूर्ण देश क्यों माना जाता है? व्याख्या करें।
8. सांस्कृतिक विविधता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का वर्णन करते हुए बताएँ कि क्या अति राष्ट्रवाद सांस्कृतिक विविधता को नष्ट करता है?
9. भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, भारतीय सांस्कृतिक एकता के लिये चुनौती है? समीक्षा करें।
10. राष्ट्रवाद की विकृत होती परिभाषा ने विश्व के समक्ष नई समस्याएँ पैदा कर दी हैं। टिप्पणी कीजिये।

2 भारतीय संस्कृति का प्रसार

(Expansion of Indian Culture)

भूमिका

भारत की प्राकृतिक विविधता (हिमालय पर्वत, समुद्र एवं रेगिस्तान) विश्व के अन्य देशों से नज़दीकी संबंध बनाने में कभी बाधक नहीं बनी। भारतीय लोगों ने सुदूर देशों की यात्राएँ कीं और वे जहाँ भी गए, वहाँ उन्होंने भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। अपने साथ ये सुदूर देशों तक अपने विचार, जीवन शैली, रीति-रिवाज़ और परंपराओं को भी ले गए, इससे भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रसार विश्व के विभिन्न भागों में हुआ। विशेष रूप से इसका विस्तार मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, पूर्व एशिया आदि क्षेत्रों में हुआ। इस प्रसार का उद्देश्य किसी समाज या व्यक्ति को जीतना या भयभीत करना नहीं, बल्कि भारत के आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसार करना था। भारत अपने इस उद्देश्य में बहुत हद तक सफल भी रहा।

सभ्यता और संस्कृति का प्रसार युद्ध-विजय और व्यापार से होता है। प्राचीन काल से ही भारत कभी भी आक्रांता देश नहीं रहा है, लेकिन भारत का व्यापार के माध्यम से जो संपर्क बाह्य देशों से हुआ, उसे वह सांस्कृतिक विजय में तब्दील करने में सफल रहा। भारत हड़प्पा युग से ही अपने एशियाई पड़ोसियों से संपर्क बनाए हुए है। भारतीय व्यापारी मेसोपोटामिया के नगरों तक पहुँचे, जहाँ 2400 ईसा पूर्व से 1700 ईसा पूर्व के बीच की उन व्यापारियों की मुहरें पाई गई हैं। ईसवी सन् के आरंभ से भारत ने पूर्व एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया और रोमन साम्राज्य के साथ वाणिज्यिक संबंध बनाए रखा।

भारतीय संस्कृति का दूसरे देशों में प्रसार के कारण

भारत की सामरिक महत्ता

हिंद महासागर के तट पर स्थित होने के कारण विश्व में भारत की स्थिति सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। अपनी इस स्थिति के कारण भारत तत्कालीन सभ्य एवं सुसंस्कृत देशों में फैली सभ्यताओं के संपर्क में आता रहता था। अनेक एशियाई देश उस समय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की अवस्था में काफी पीछे थे। सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, स्याम, हिंद-चीन, बर्मा और मलाया आदि देश भारतीय संस्कृति के संपर्क में आकर सभ्य बने।

व्यापार वृत्ति

मध्यकाल में समुद्री यात्रा को अशुभ मानने का विचार विकसित हुआ, लेकिन प्राचीन काल में ही भारतीय व्यापार अपने चरमोत्कर्ष पर

खंड

2

भारत की दृश्य कलाएँ

- भारतीय वास्तुकला
- भारतीय मूर्तिकला
- भारतीय चित्रकला
- भारत में हस्तशिल्प एवं वेशभूषा

3 भारतीय वास्तुकला
(Indian Architecture)

कला क्या है?

कला सिर्फ एक शब्द नहीं है। इसकी अर्थ-व्यापकता के अनेक क्षेत्र हैं। भाषा, संस्कृति, इतिहास, साहित्य और समाज में यह अनेक रूपों में स्थापित है। इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता रहा है। जहाँ संस्कृत में यह शब्द अलंकरण और शोभा से संबंधित है, वहीं इतिहास व संस्कृति में इसे सौंदर्य अथवा आनंद से परिभाषित किया गया है, साथ ही प्राचीन भारत में इसे साहित्य और संगीत के समकक्ष माना गया है।

'कला' शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कृत' की 'कल' धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'संख्यान' से है। शब्द संख्यान का आशय है- 'स्पष्ट वाणी में प्रकट करना'। यानी 'कला' शब्द का आशय है- जिसे स्पष्ट रूप में और व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त किया जा सके। 'कला' शब्द के अंग्रेज़ी अनुवाद 'आर्ट' का आशय भी कौशल या निपुणता से है। यानी कला सौंदर्यशास्त्रीय सृजनात्मकता का प्रतीक है। प्रवृत्तियों के आधार पर तो कला के अनेक रूप हैं, किंतु अध्ययन के लिहाज़ से इसका सामान्य वर्गीकरण निम्नलिखित है–

कला

दृश्य कलाएँ	निष्पादन कलाएँ	साहित्यिक कलाएँ
कला का वह रूप जो मुख्यत: दृश्य प्रकृति का होता है, जैसे– वास्तुकला, मूर्ति-कला, चित्रकला, फोटोग्राफी, वीडियो ग्राफी इत्यादि।	कला का वह रूप, जिसमें कलाकार अपने ही शरीर, मुखमंडल, भाव-भंगिमा आदि का प्रयोग कर कला का प्रदर्शन करते हैं, जैसे- नृत्य, संगीत, रंगमंच आदि।	भाषा और लिपियों का प्रयोग कर साहित्य की रचना करना भी एक विशेष कला-रूप है। इसमें साहित्यिक विकास और भाषा-लिपियों के रेखांकन पर बल दिया जाता है।

वास्तुकला/स्थापत्यकला

'वास्तु' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द 'वस्' से हुई है, जिसका आशय बसने या रहने से है। 'स्थापत्य' शब्द वास्तु का पर्यायवाची है। कला में दोनों का प्रयोग प्राय: समान अर्थ में किया गया है। कला की भाँति 'वास्तु या स्थापत्य कला' के उद्भव एवं विकास का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव-सभ्यता का। आदिमानव के आश्रय-स्थल प्राकृतिक गुफाएँ, शैलाश्रय तथा वृक्ष हुआ करते थे। यूरोपीय महाद्वीप के अंतर्गत स्पेन तथा फ्राँस के समीपवर्ती प्रदेश में ऐसी अनेक गुफाएँ मिली हैं, जिनमें आदिमानव के निवास करने के स्पष्ट प्रमाण मौजूद हैं। भारत में भी विभिन्न शैलाश्रयों एवं प्राकृतिक गुफाओं में मानव के रहने के साक्ष्य मिले हैं। मानव सभ्यता ने जैसे-जैसे प्रगति की, वैसे-वैसे वास्तुकला व स्थापत्य कला के रूपों में भी परिवर्तन आता गया। भारत में प्रागैतिहासिक काल से लेकर 12वीं सदी तक स्थापत्य कला के विकास में निरंतरता दिखती है। यद्यपि भारतीय कला पर विदेशी प्रभाव प्रारंभ से ही बार-बार पड़ता रहा है, तथापि कलाओं का भारतीय स्वरूप बरकरार रहा। अत: 13वीं सदी से लेकर ब्रिटिश काल के बीच भी भारतीय स्थापत्य कला ने एक नई ऊँचाई ग्रहण की।

भारतीय स्थापत्य के बारे में एक विचारणीय प्रश्न यह है कि किसी प्राचीन स्थापत्य या कलाकृति में रचनाकारों का नाम उल्लिखित क्यों नहीं किया गया है? क्या प्राचीन भारतीय कला अनाम है या कुछ और कारण रहे हैं? दरअसल प्राचीन काल में कलाकार सामान्यतया उन शासकों तथा संभ्रांत लोगों के आश्रय में रहते थे, जो अपने धार्मिक उत्साह को इन व्यावसायिक वर्गों के माध्यम से अभिव्यक्त करने को सदा उत्सुक रहते थे। युग-युगांतर तक भारतीय कला का यह आत्मिक/धार्मिक उत्साह सारे देश में बिखरे स्मारकों और मंदिरों में प्रकट होता रहा है। यानी शासक और संभ्रांत लोगों के धन से निर्मित कलाकृतियाँ कलाकारों के नाम से नहीं पहचानी गईं, अपितु शासक के कालक्रम से ही जानी तथा समझी जाती रही हैं। दूसरी बात यह है कि भारत में कला और धर्म का घनिष्ठ संबंध रहा है। यहाँ कला में धर्म की भूमिका अथवा आध्यात्मिकता का अत्यधिक प्रभावशाली एवं व्यापक पक्ष दृष्टिगोचर होता है। परिणामस्वरूप कला संप्रेषण का माध्यम बनकर तत्कालीन समाज की आवश्यकता की पूरक बन गई। अध्ययन की दृष्टि से भारतीय स्थापत्य को उसकी प्रवृत्तियों/विशेषताओं तथा कालक्रम के संदर्भ में देखना ज़्यादा समीचीन होगा।

भारतीय स्थापत्य

- सैंधव स्थापत्य
- बौद्ध वास्तुकला
- मंदिर वास्तुकला
- इंडो-इस्लामिक वास्तुकला
- आधुनिक वास्तुकला

सिंधुकालीन स्थापत्य

भारत में सर्वप्रथम हड़प्पा सभ्यता में सुव्यवस्थित स्थापत्य निर्माण (नगरों का प्रादुर्भाव) के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। हड़प्पा सभ्यता भारतीय संस्कृति की लंबी एवं वैविध्यपूर्ण कहानी का प्रारंभिक बिंदु है।

4 भारतीय मूर्तिकला
(Indian Sculpture)

भूमिका

मूर्तिकला भारतीय उपमहाद्वीप में हमेशा से कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रिय माध्यम रही है। भारतीय भवनों के निर्माण और साज-सज्जा में जिस तरह से मूर्तिकला का उपयोग किया गया है, वह भवनों के सौंदर्य का विशेष कारक है। भारतीय कला का स्वरूप रोचक, सहज और मूर्तिप्रधान है। ऐसा लगता है मानो भारत में मूर्तिकार और वास्तुकार अक्सर एक ही व्यक्ति होता होगा। प्राचीन भारत में मूर्तिकला का विकास अन्य ललित कलाओं, जैसे- स्थापत्य तथा चित्रकला के साथ ही हुआ दिखता है। मूर्तिकार किसी भावना को मिट्टी, पत्थर अथवा धातु से मंदिर की दीवारों या उसके भीतरी भागों में जमा देता है।

भारत में मूर्तिकला का विकास अनेक रूपों में हुआ, जैसे- मृण्मूर्तिकला, धातु मूर्तिकला, पाषाण मूर्तिकला आदि। एक ओर जहाँ यवन मानव शरीर की दैहिक सुंदरता को दर्शाने में सर्वोपरि थे, वहीं भारतीय अपने अध्यात्म को मूर्तियों में ढालने का प्रयास करने में अद्वितीय थे। यह वह अध्यात्म था, जिसमें लोगों के उच्च आदर्श और मान्यताएँ निहित थीं। जब कलाकार प्रकृति देवी यक्षिणी या जनन की प्रतीक नारी या दिव्य सुंदरी की परिकल्पना करता है तो उसकी भौंहें धनुष की चाप, आँखें वक्र मछली, होंठ कमल की पंखुड़ी, बाँहें रमणीय लता और पैर केले के वृक्ष की भाँति शुंडाकार बनाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय कला में आध्यात्मिकता और सौंदर्यबोध दोनों का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। भारतीय मूर्तिकला को निम्नलिखित कालखंडों में बाँटकर देखना श्रेयस्कर है–

सिंधु मूर्तिकला

अन्य कलाओं के समान ही भारतीय मूर्तिकला भी अत्यंत प्राचीन है। यद्यपि पाषाण काल में मानव अपने पाषाण उपकरणों को कुशलतापूर्वक काट-छाँटकर विशेष आकार देता था और पत्थर के टुकड़े से फलक निकालते हुए 'दबाव' तकनीक या पटककर तोड़ने की तकनीक का इस्तेमाल करने लगा था। मूर्तिकला का प्राचीनतम साक्ष्य उच्च पुरापाषाण काल से दिखाई देता है, जहाँ की बेलन घाटी में लोहंदानाला से अस्थि निर्मित मातृदेवी की मूर्ति प्राप्त हुई है। इसके बाद के कालखंड में भी पाषाण मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, परंतु भारत में मूर्तिकला अपने वास्तविक रूप में हड़प्पा सभ्यता के दौरान ही अस्तित्व में आई। सैंधव सभ्यता की खुदाई में अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार लगभग 4000 वर्ष पूर्व ही भारत में मूर्ति निर्माण तकनीक के विकसित होने का प्रमाण मिल जाता है।

हड़प्पा सभ्यता में मृण्मूर्ति (मिट्टी की मूर्ति), प्रस्तर मूर्ति तथा धातु मूर्ति तीनों गढ़ी जाती थीं। प्रस्तर तथा धातु की मूर्तियाँ यद्यपि कम हैं, तथापि वे कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं।

मृण्मूर्ति

मनुष्य ने मूर्ति गढ़ने की कला की शुरुआत मिट्टी से की। मिट्टी की छोटी-छोटी मूर्तियों को 'मृण्मूर्ति' कहा जाता है। हड़प्पा सभ्यता में मृण्मूर्ति के साक्ष्य बहुतायत में मिलते हैं। मृण्मूर्ति की निर्माण सामग्री के रूप में मिट्टी तथा साँचा प्रमुख है। इसके बनाने की विधि है– अंग-प्रत्यंग जोड़कर मूर्ति का निर्माण करना। हाथ के अंगूठे यानी चुटकी का इस्तेमाल करके हड़प्पा में मूर्ति का निर्माण होता था। इसे 'चिपकवा विधि' कहते हैं। मृण्मूर्ति के मुख्य विषय हैं– सीटियाँ, झुनझुना, खिलौना, पशु-पक्षी और नारी-पुरुष। इनमें सर्वाधिक मृण्मूर्तियाँ सीटियों तथा झुनझुनों की हैं और सबसे कम पुरुषों की। मृण्मूर्ति में वर्णित विषयों के आधार पर हड़प्पा की मृण्मूर्तियों का उद्देश्य धार्मिक भी नज़र आता है और धर्मनिरपेक्ष भी। हड़प्पा से प्राप्त विशिष्ट मृण्मूर्तियों के उदाहरण हैं–

- विवादित गाय मृण्मूर्ति- लोथल से
- विवादित घोड़ा मृण्मूर्ति- लोथल से
- फ्रेंच कट दाढ़ी में पुरुष मृण्मूर्ति- लोथल से
- मातृदेवी की दो मृण्मूर्तियाँ- बनावली और राखीगढ़ी से।

हड़प्पा सभ्यता की मृण्मूर्तियों में पुरुष आकृतियों को शृंगयुक्त (सींग) दिखाया गया है। विभिन्न स्थलों से प्राप्त पुरुष मृण्मूर्तियों के साधारण गठन से सूचित होता है कि निर्माता-कलाकार की इसमें कोई खास रुचि नहीं थी। नारी मृण्मूर्तियाँ अपेक्षाकृत सुंदर तथा प्रभावोत्पादक हैं। इन्हें गहनों से लादा गया है। इनके मस्तक पर पंखे के समान फैला हुआ आवरण, कानों में गोलाकार कुंडल, गले में कंठा, छाती पर कई लड़ियों वाला हार, कमर में मेखला तथा भुजाओं में भुजबंद प्रदर्शित किये गए हैं। इनमें आँखें, स्तन, आभूषण आदि अलग से चिपकाए गए हैं। नारी मृण्मूर्तियों की प्रचुरता से यह अनुमान लगाया गया है कि सैंधव लोगों के धार्मिक जीवन में मातृ-पूजन का विशेष महत्त्व था। कालांतर में इसी को भारतीय परंपरा में शक्तिदेवी, मातृदेवी आदि रूपों में मान्यता दी गई।

हिलते हुए सिर का पशु खिलौना, मोहनजोदड़ो

5 भारतीय चित्रकला
(Indian Painting)

भूमिका

रेखा, वर्ण एवं रंग के माध्यम से विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करने की शैली को चित्रकला कहते हैं। आत्माभिव्यक्ति मानव की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। अभिव्यक्ति की इच्छा मानवीय अस्तित्व की मूलभूत आवश्यकता है। अपने अंदर के भाव प्रकट किये बिना मनुष्य रह नहीं सकता और भावों का आधार होता है– मनुष्य का परिवेश। विद्वानों की मान्यता है कि आदिम काल में जब भाषा और लिपि-चिह्नों का आविर्भाव नहीं हुआ था, तब रेखाओं के संकेत से ही व्यक्ति स्वयं को अभिव्यक्त करता था। गुफाओं के अंदर आज जो शिलाचित्र मिलते हैं, वे ही चित्रकला के आदिम प्रमाण हैं। इतिहास का उदय होने से पूर्व कई हज़ार वर्षों तक जब मनुष्य गुफा में रहता था, उसने अपनी सौंदर्यपरक अतिसंवेदनशीलता और सृजनात्मक प्रेरणा को संतुष्ट करने के लिये शैलचित्र बनाए।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य गुफाओं में रहता था तो उसने गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी की। बाद में जब नगरीय सभ्यता का उदय होने लगा तो चित्रकारी गुफाओं से निकलकर बर्तनों, वस्त्रों, मुहरों आदि पर होने लगी। बौद्ध एवं जैन धर्म के आगमन और उनकी संवृद्धि के साथ-साथ चित्रकला में और अधिक नवीनता के संकेत मिलने लगते हैं। इस दौर की कला में रंग संयोजन और भाव चित्रण धार्मिकता के गहरे आवरण में डूबा था। फिर मध्यकाल में मुगलों का दौर शुरू होने पर भारतीय चित्रकला में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मुगल बादशाह जहाँगीर इस कला का बेहतरीन जानकार था। उत्तर मुगल काल में गिरती राजनीतिक और आर्थिक स्थिति के कारण चित्रकार स्थानीय ज़मींदारों और राजाओं की शरण में चले गए। इस दौरान क्षेत्रीय चित्रकला शैलियों का व्यापक विकास हुआ। अंग्रेज़ी राज में एक बार फिर चित्रकला को नई दृष्टि मिली और कला में आंदोलनों का दौर प्रारंभ हुआ। वर्तमान दौर में चित्रकारों ने कला में नवीनतम प्रयोग, जैसे- विनाइल कंप्यूटर और वीडियो पेंटिंग को अपनाना शुरू किया है। इस प्रकार भारतीय चित्रकला को यदि समग्रता से देखते हैं तो यह विकासमान नज़र आती है। यह मानव सभ्यता के विकास से लेकर आज तक अपनी कलात्मक उर्वरता का परिचय देती रही है।

भारतीय चित्रकला की विशेषताएँ

प्रत्येक समाज की चित्रकला विशिष्ट होती है और वह अपनी ऊर्जा स्थानीय परंपराओं से ग्रहण करती है, भारतीय चित्रकला भी इसका अपवाद नहीं है। उसकी भी शक्ति का अंत:स्रोत यहाँ की परंपराएँ हैं। अत: भारतीय चित्रकला की विशेषताओं को निम्नलिखित आधारों पर रेखांकित किया जा सकता है–

धार्मिक प्रभाव

भारतीय चित्रकला हेतु धर्म एक बड़ा प्रेरणास्रोत रहा है। अजंता, बाघ आदि गुफाओं में भगवान बुद्ध के जीवन को, वहीं राजपूत एवं कांगड़ा आदि की चित्रकलाओं में राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओं को स्थान दिया गया है। मुगल शैली में हमें संतों और फकीरों का चित्रण मिलता है। चित्रकला में आधुनिकता के उद्गम के साथ ही धार्मिक भावना में ह्रास के संकेत दिखाई देने लगते हैं। अब चित्रकला में धार्मिकता के स्थान पर मनुष्य को केंद्र में रखा जाने लगा है।

कल्पनाशीलता

भारतीय चित्रकारों का मन यथार्थ की अपेक्षा कल्पना में ज़्यादा रमा है। अनेक देवी-देवताओं को चित्रकारों ने कल्पना की शक्ति के सहारे ऐसा जीवंत रूप प्रदान किया कि एक सामान्य हिंदू मन में ईश्वर की छवि किसी चित्र के सहारे ही उद्दीप्त होती है। भगवान बुद्ध से जुड़ी कथा के चित्र कल्पना-प्रसूत हैं। सृष्टि के संहार और सृजन को कलाकारों ने कल्पनाशक्ति के माध्यम से एक छोटे चित्र में ही उकेरकर रख दिया है।

रेखाओं की प्रधानता

भारतीय चित्रकला को रेखा प्रधान माना गया है। आदिम कलाकारों से लेकर आधुनिक कलाओं में रेखाओं की व्यापकता को महसूस किया जा सकता है। भारतीय चित्रों के आकार कई भुजाओं वाले या दीर्घवृत्ताकार नहीं होते। इसका परिणाम होता है कि चित्र मांसल दिखने के बजाय गतिमय और सूक्ष्म भावों से युक्त होकर ज़्यादा सौंदर्य बोध कराते हैं।

आदर्शवाद

भारतीय कला यथार्थवादी होने के बजाय आदर्शवाद की ओर अधिक झुकी हुई है। चित्रकारों ने आदर्श राजा, आदर्श प्रेमी-प्रेमिका या आदर्श प्रकृति के विचार को अपनाया। जीवन में उल्लास का आदर्श ज़्यादा प्रभावशाली तरीके से चित्रित किया गया। आधुनिक युग की शुरुआत के साथ भारतीय चित्रकला इस दबाव से मुक्त होनी शुरू हुई और चित्रों में यथार्थपरकता का समावेश दिखने लगा।

प्रतीकात्मकता

भारतीय चित्रकला में प्रतीकात्मकता का अधिक प्रयोग हुआ है, जैसे– अगर साँप या जटाजूट में सुसज्जित चंद्रमा चित्रकार ने बनाया है तो इसका आशय भगवान शिव के चित्रण से है और इसी प्रकार मुरली या मोरपंख का चित्रण भगवान कृष्ण और लाठी एवं चश्मा महात्मा गांधी के चित्रण से जुड़ गया है। इसी तरह रंगों को प्रतीक बनाकर चित्रकारों ने अपनी बात को व्यक्त करने का प्रयास किया है। आधुनिक युग के चित्रकारों में इस प्रवृत्ति का बहुत अधिक विकास हुआ है।

6 भारत में हस्तशिल्प एवं वेशभूषा
(Handicraft and Apparel in India)

सामान्य शब्दों में अगर कहा जाए तो हस्तशिल्प हाथ के कौशल से तैयार किये जाने वाले वे रचनात्मक उत्पाद हैं, जिनके निर्माण में किसी आधुनिक मशीनरी एवं उपकरणों की मदद नहीं ली जाती है। हस्तशिल्प की प्रविधि काफी जटिल होती है, इसमें अनेक चरण होते हैं तथा यह दीर्घ अवधि के श्रम से जुड़ी होती है। यही कारण है कि इनका मूल्य मशीन निर्मित उत्पादों की अपेक्षा ज़्यादा होता है तथा ये फैशन एवं विलासिता की वस्तु मानी जाती है।

प्राचीन काल से ही भारत हस्तशिल्प के मामले में समृद्ध रहा है तथा विभिन्न देशों के साथ व्यापारिक संबंध बनाने में कामयाब रहा है। एक समय भारत रेशम मार्ग के रास्ते अपने इन हस्तनिर्मित उत्पादों को यूरोप, अफ्रीका, पश्चिम एशिया आदि देशों को निर्यात करता था, जिसके कारण इन देशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के हस्तशिल्प उत्पादों के उत्पादन में अपनी विशिष्ट पहचान है। इनमें प्रमुख क्षेत्र हैं–

- कश्मीर- कढ़ाई वाली शॉलों, गलीचों, नामदार सिल्क तथा अखरोट की लकड़ी से बने फर्नीचर के लिये।
- राजस्थान- बंधेज वाले वस्त्रों, हीरे-जवाहरात जड़े आभूषणों, चमकीले बर्तनों एवं मीनाकारी के लिये।
- तमिलनाडु- अरूंबवुर काष्ठ नक्काशी, टोड़ा कढ़ाई एवं तंजावुर नेट्टी शिल्पकला आदि के लिये।
- तेलंगाना- बीदरी के काम तथा पोचमपल्ली की सिल्क साड़ियों के लिये।
- छत्तीसगढ़- ढोकरा धातु शिल्प के लिये।
- तमिलनाडु- ताम्र-मूर्तियों एवं कांजीवरम की साड़ियों के लिये।
- मैसूर- रेशम की साड़ी और चंदन की लकड़ी की वस्तुओं के लिये।
- केरल- हाथी दाँत की नक्काशी और शीशम की लकड़ी से बने फर्नीचर के लिये।
- मध्य प्रदेश- कोसा (तसर) सिल्क और चंदेरी सिल्क साड़ियों के लिये।
- लखनऊ- चिकन की कारीगरी के लिये। महीन कपड़े पर सुई-धागे से विभिन्न टाँकों द्वारा की गई हाथ की कारीगरी लखनऊ की चिकन कला कहलाती है।
- बनारस, ब्रोकेड तथा जरी वाली सिल्क साड़ियों के लिये तथा असम बेंत के फर्नीचर के लिये विशेष रूप में जाना जाता है। पश्चिम बंगाल के बाँकुड़ा का टेराकोटा, गोरखपुर का टेराकेटा तथा मुर्शिदाबाद, बीरभूम, हुगली ज़िलों का हाथ से बुना हुआ कपड़ा देश के साथ विदेशों में भी प्रसिद्ध है।

विभिन्न युगों में हस्तशिल्प की स्थिति

प्राचीनकालीन हस्तशिल्प

सिंधु घाटी हस्तशिल्प

सैंधव सभ्यता के अनेक स्थलों की खुदाई से प्राप्त होने वाले पुरातात्त्विक साक्ष्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सिंधु सभ्यता के लोग शिल्प तकनीक एवं वस्त्र निर्माण कला से परिचित थे। प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यों में शिल्प उद्योग से जुड़े विशिष्ट समूहों, जैसे–ताम्रकार, स्वर्णकार, पत्थर तराशने वाले, ईंट निर्माता, बुनकरों, मिट्टी से विभिन्न वस्तुओं को बनाने वालों आदि के संबंध में जानकारी मिली है। इस सभ्यता से जुड़े अन्य तथ्य निम्नलिखित हैं–

- सिंधु सभ्यता में सबसे लोकप्रिय धातु कांस्य थी। इस सभ्यता से जुड़े स्थलों में धात्त्विक शिल्पकला के तौर पर तांबे एवं काँसे के बर्तनों के साक्ष्य मिलते हैं।
- चन्हुदड़ो इस काल में शिल्प उत्पादन का प्रसिद्ध केंद्र था। यहाँ मोती निर्माण, सीपी काटने, मुहरों का निर्माण, धातु कार्य आदि किये जाते थे।
- मोहनजोदड़ो से एक पुरोहित की मूर्ति प्राप्त हुई है, जो तिपतिया अलंकरण से युक्त है। तिपतिया अलंकरण वस्तुत: वस्त्रों पर कढ़ाई करने की एक कला थी। इससे स्पष्ट होता है कि इस सभ्यता के लोग वस्त्रों पर कढ़ाई करने की कला से भी परिचित थे।
- इसके अतिरिक्त यहाँ विभिन्न स्थलों की खुदाई में प्राप्त कताई-बुनाई के विभिन्न उपकरणों, जैसे- तकली, सुई आदि से भी स्पष्ट होता है कि यहाँ वस्त्र निर्माण केंद्र था।
- सीपी की वस्तुओं, जैसे कि चूड़ियाँ, जड़ित वस्तुएँ, चम्मच इत्यादि के निर्माण हेतु नागेश्वर व बालाकोट विशिष्ट केंद्र थे, जहाँ से वस्तुएँ अन्य स्थानों पर ले जाई जाती थीं।
- इस सभ्यता की विभिन्न आकृतियों एवं डिज़ाइनों के बने मिट्टी के पात्र शिल्पकारों की दक्षता की ओर इशारा करते हैं।

मौर्यकालीन हस्तशिल्प

- मौर्य शासनकाल में राजनीतिक एकता एवं शक्तिशाली केंद्रीय शासन की बदौलत व्यापार-वाणिज्य में उन्नति हुई तथा इससे शिल्पियों को भी प्रोत्साहन मिला।
- इस काल में खानों से कच्ची धातु निकालने, उसे गलाने, शुद्ध करने तथा लचीला बनाने की क्रिया की जानकारी प्राप्त हो चुकी थी।
- मेगस्थनीज ने अनेक प्रकार की धातुओं, जैसे–सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि की खदानों का ज़िक्र किया है। इन धातुओं का उपयोग आभूषण, बर्तन, युद्ध के हथियार, सिक्के आदि बनाने में किया जाता था।

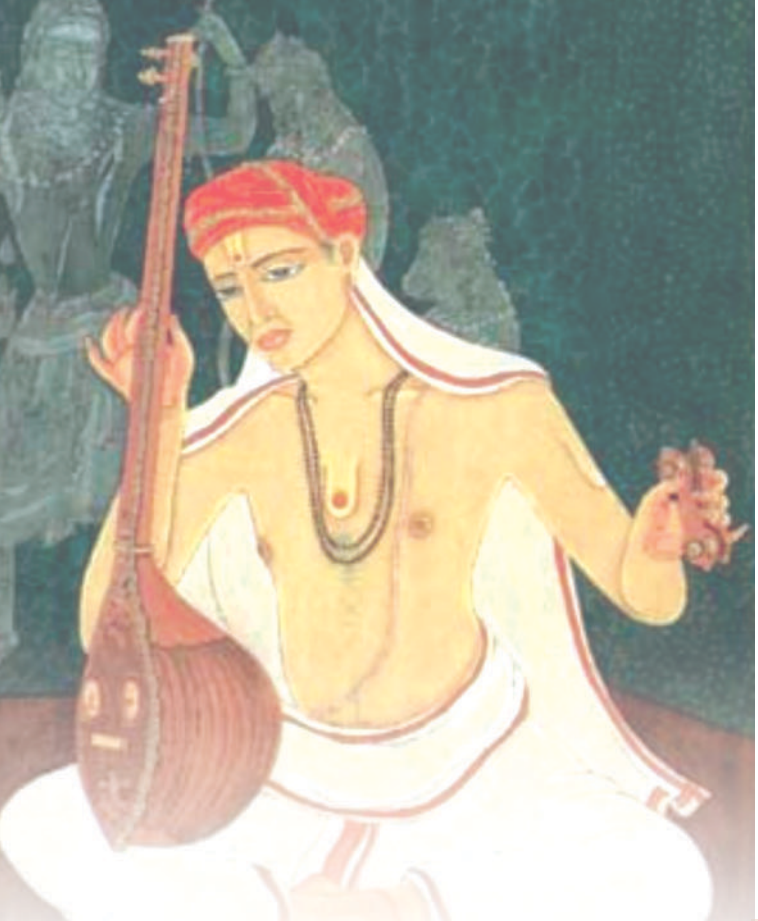

खंड 3

भारत की निष्पादन कलाएँ

- भारतीय नृत्य परंपरा
- भारतीय संगीत
- भारत में रंगमंच कला
- भारतीय सिनेमा
- भारत की परंपरागत युद्धकला एवं खेल

7 भारतीय नृत्य परंपरा
(Indian Dance Tradition)

भूमिका

नृत्य एक सार्वभौमिक कला है जिसका जन्म मानव जीवन के आरंभ के साथ ही हुआ है। वस्तुतः नृत्य मानवीय अभिव्यक्ति का रसमय और क्रियात्मक प्रदर्शन है। इसे दूसरे रूप में कहें तो यह एक सशक्त आवेग है जिसके माध्यम से मानव जीवन के दोनों पक्षों, यथा-सुख एवं दुःख को विभिन्न नियंत्रित मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार अंग-प्रत्यंग एवं मनोभावों के साथ की गई नियंत्रित यति-गति को नृत्य कहते हैं।

भारतीय नृत्यकला के विकास को धर्म एवं दर्शन से जुड़ा हुआ माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि संसार में बढ़ते क्रोध, दुःख एवं ईर्ष्या को देखते हुए ब्रह्मा ध्यानमग्न हुए तथा उन्होंने नाट्य संगीत की रचना की। इस तरह नृत्य ईश्वर एवं मनुष्य के आपसी प्रेम को दर्शाता है। भारतीय पुराणों में नृत्य को दुष्ट नाशक एवं ईश्वर प्राप्ति का साधन बताया गया है। ऐसी मान्यता है कि अमृत पान के पश्चात् जब दुष्ट राक्षसों को अमरत्व प्राप्त होने का संकट उत्पन्न हुआ तब भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर अपने लास्य नृत्य द्वारा तीनों लोकों को राक्षसों से मुक्ति दिलाई। इसी प्रकार, भगवान शंकर ने जब दैत्य भस्मासुर की तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि वह जिसके ऊपर हाथ रखेगा वह भस्म हो जाएगा, तो वरदान प्राप्ति के पश्चात् भस्मासुर ने सर्वप्रथम भगवान शंकर को ही भस्म करने की ठानी और उनका पीछा करना आरंभ किया। ऐसे में तीनों लोकों पर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। ऐसी संकट की घड़ी में एक बार फिर भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर मनमोहक नृत्य के माध्यम से भस्मासुर को अपनी ओर आकर्षित किया तथा उसका वध करके संसार की रक्षा की।

भारतीय परंपरा में नृत्यकला के दो अंग स्वीकार किये गए हैं- तांडव तथा लास्य। तांडव नृत्य का जनक भगवान महादेव (शंकर) को माना गया है। तांडव नृत्य में संपूर्ण खगोलीय रचना एवं इसके विनाश की एक लयबद्ध कथा को नृत्य के रूप में दर्शाया गया है। तांडव नृत्य में दो भंगिमाएँ हैं- रौद्र रूप एवं आनंद प्रदान करने वाला रूप। इसका पहला रूप काफी उग्र होता है तथा इसे करने वाले 'रुद्र' कहलाए। जबकि तांडव का दूसरा रूप आनंद प्रदान करने वाला है, जिसे करने वाले शिव 'नटराज' कहलाए। इस रूप में तांडव नृत्य का संबंध सृष्टि के उत्थान एवं पतन दोनों से है।

वहीं, लास्य नृत्य का आरंभ देवी पार्वती से माना जाता है। इसमें नृत्य की मुद्राएँ बेहद कोमल, स्वाभाविक एवं प्रेमपूर्ण होती हैं, तथा इसमें जीवन के श्रृंगारिक पक्षों को विभिन्न प्रतीकों व भावों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

नटराज-शिव

नटराज, शिव का दूसरा नाम है। 'नटराज' का शाब्दिक अर्थ है-नृत्य करने वालों का सम्राट। अन्य अर्थों में देखें तो 'नटराज समस्त चराचर जगत के सृजन एवं विनाश में एक निदेशक की भूमिका में है।' वस्तुतः नटराज के रूप में शिव एक उत्तम नर्तक तथा सभी कलाओं के आधार स्वरूप हैं।

विद्वानों का मानना है कि शिव के आनंदरूपी तांडव से ही सृष्टि का उत्थान हुआ है तथा उनके इस मनमोहक स्वरूप की अनेक व्याख्याएँ हैं।

नटराज की मुद्रा में नृत्य करने वाले शिव की प्रसिद्ध मूर्ति की चार भुजाएँ हैं, जो प्रतीकात्मक अर्थ लिये हुए हैं। उनके चारों तरफ अग्नि का घेरा है। एक पाँव से उन्होंने राक्षस को दबा रखा है तथा दूसरा पाँव नृत्य की मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है, उन्होंने अपने दाहिने हाथ (जो कि ऊपर की ओर उठा हुआ है) में डमरू को पकड़ रखा है। इस डमरू से निकलने वाली ध्वनि सृजन का प्रतीक है। इस प्रकार यहाँ शिव सृजनात्मकता के द्योतक के रूप में हैं। ऊपर उठे हुए उनके दूसरे हाथ में अग्नि है, जो विनाश की द्योतक है। इसका अर्थ है कि शिव जहाँ अपने एक हाथ से संसार का सृजन करते हैं, वहीं दूसरे हाथ से संहार भी करते हैं। उनका एक अन्य हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है जो बुराइयों से हमारी रक्षा करता है। उनका उठा हुआ पाँव मोक्ष का द्योतक है तथा उनका दूसरा बायाँ हाथ उनके उठे हुए पाँव की ओर इशारा करता है जिसका अर्थ है- शिव मोक्ष के मार्ग को दिखा रहे हैं अर्थात् शिव के चरणों में ही मोक्ष है। चारों ओर उठने वाली अग्नि की लपटें ब्रह्मांड का प्रतीक हैं। उनके शरीर पर लहराते सर्प कुंडलिनी शक्ति के द्योतक हैं। उनकी संपूर्ण आकृति 'ऊँ' कार स्वरूप जैसी दिखती है, जिसका अर्थ है कि 'ऊँ' शिव में ही निहित है।

तांडव नृत्य

शिव के द्वारा नटराज रूप में किये जाने वाले इस नृत्य को 'तांडव नृत्य' कहा गया। वस्तुतः सबसे पहले स्वरमाला की उत्पत्ति शिव के डमरू से निकली ध्वनि से मानी जाती है। नटराज के हाथ में अग्नि का एक तात्पर्य यह भी माना जाता है कि मन की बुराइयों को दूर करने के लिये संकल्परूपी अग्नि को हमेशा जलाए रखना चाहिये। यह संकल्परूपी अग्नि सभी बुराइयों को दूर करके, अच्छाइयों को बढ़ाने का कार्य करती है। इस प्रकार यह एक शिक्षक की भूमिका में है।

8

भारतीय संगीत
(Indian Music)

संगीत की अवधारणा

साधारण बोलचाल की भाषा में संगीत का अर्थ है– गायन। 'सम्यक् गीतम् इति संगीतम्' अर्थात् ध्यानपूर्वक या एकाग्र होकर गाए गए गीत को संगीत कहते हैं।

परिभाषा की दृष्टि से संगीत का अर्थ विशद है। इसके अंतर्गत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाएँ आती हैं। ये तीनों कलाएँ एक-दूसरे पर आश्रित हैं और एक-दूसरे के बिना अधूरी हैं। 'संगीत' शब्द गीत में सम् जोड़ने से बना है। सम् का आशय है– सहित और गीत का अर्थ है– गान; यानी नृत्य और वादन के साथ किया गया गान ही संगीत है। कला की श्रेणी में पाँच ललित कलाएँ आती हैं– संगीत, कविता, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला। इन ललित कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

संगीत का इतिहास

संगीत की सामाजिक जीवन में उपस्थिति के प्रारंभिक प्रमाण हमें सिंधु घाटी की सभ्यता में मिलते हैं। खुदाई में ऐसी मूर्तियाँ और मुहरें मिली हैं जिनमें ढोल बजाते हुए लोग बनाए गए हैं। कई मूर्तियों में नृत्य की भाव-भंगिमाएँ स्पष्ट देखने को मिलती हैं। मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त नर्तकी की एक प्रसिद्ध कांस्य मूर्ति, जो कमर पर हाथ रखकर खड़ी है, लगता है नृत्य करने ही जा रही है।

वैदिक युग के ग्रंथ 'ऋग्वेद' में ज़िक्र मिलता है कि आर्यों के मनोरंजन का मुख्य साधन संगीत था। इस युग का ग्रंथ सामवेद को भारतीय संगीत का मूल माना गया है। इस ग्रंथ में देवताओं की स्तुति करते हुए गाए जाने वाले मंत्रों का वर्णन मिलता है। इसके अलावा, रामायण और महाभारत में कई ऐसे प्रसंगों का उल्लेख है, जहाँ संगीत की उपस्थिति देखी जा सकती है। तैत्तिरीय उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण, याज्ञवल्क्य-रत्न प्रदीपिका और नारदीय शिक्षा प्रभृति आदि ग्रंथों में उस समय के संगीत का परिचय मिलता है, लेकिन संगीत की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। इस ग्रंथ में छह अध्यायों में संगीत पर चर्चा की गई है। इसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, छंद, राग, लय और तालों का विशद वर्णन मिलता है। इसी तरह का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ मतंग मुनि का 'बृहद्देशी' है। संगीत के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में नारद कृत 'नारदीय शिक्षा' और 'संगीत मकरंद' हैं।

आगे चलकर भारतीय संगीत में दो शास्त्रीय परंपराएँ विकसित हुईं। जो शास्त्रीय परंपरा उत्तर भारत में चली, उसे हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत (उत्तर भारतीय संगीत), जबकि जो धारा दक्षिण में बलवती हुई, उसे कर्नाटक संगीत (दक्षिण भारतीय संगीत) कहा गया। इन दोनों शास्त्रीय परंपराओं के अलावा यहाँ लोक संगीत की विधा भी विकसित और पल्लवित होती रही। ये तीनों धाराएँ आज भी प्रचलन में हैं और एक-दूसरे को प्रभावित कर रही हैं। इसके अलावा, हमारे देश में उपशास्त्रीय संगीत भी प्रचलन में है। उपशास्त्रीय संगीत में, शास्त्रीय संगीत की तुलना में गायक को थोड़ी-बहुत छूट रहती है।

आधुनिक काल में उन्नीसवीं सदी में संगीत में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। हुआ यह कि संगीत के दो विद्वानों ने संगीत के स्वरों की लिपि तैयार की, ताकि संगीत को लिखा अथवा लिपिबद्ध किया जा सके। ये विद्वान थे– विष्णु नारायण भातखंडे और विष्णु दिगंबर पलुस्कर। उस समय तक जो संगीत ग्रंथ उपलब्ध थे, वे अधिकांशतः संस्कृत में थे और उन्हें समझना अपेक्षाकृत जटिल था। दूसरी समस्या यह थी कि संगीत को सुन-सुन कर ही लोगों ने सीखा और पीढ़ी-दर-पीढ़ी संगीत ऐसे ही विकसित हुआ। इसका एक दुष्परिणाम यह था कि संगीत की कई बारीकियाँ नष्ट हो गईं या परिवर्तित हो गईं। इसका समाधान केवल यही था कि संगीत की लिपि (स्वरलिपि) को कागज़ पर लिख लिया जाए, ताकि उसमें परिवर्तन की स्थिति का ज्ञान हो सके।

भारतीय संगीत की मूल संरचना

संगीत स्वर पर आधारित होता है। स्वर, नाद से संबंधित है और नाद का संबंध श्रुति से है। ध्वनि या नाद दो प्रकार के होते हैं– आहत और अनाहत। आहत नाद हम सुन सकते हैं, जबकि अनाहत नाद हमें सुनाई नहीं देता। इस आहत नाद से ही संगीत का जन्म होता है। यह हम तक कंपन के ज़रिये पहुँचता है।

भारतीय संगीत की मूलभूत संरचना में निम्नलिखित तत्त्व हैं:

श्रुति

वह सूक्ष्मतम ध्वनि जो सुनी जा सके, श्रुति कहलाती है। सभी ध्वनियाँ रंजक अर्थात् मधुर व संगीतमयी नहीं होतीं। अतः श्रुति के अंतर्गत केवल सुनी जा सकने वाली रंजक ध्वनियों को ही सम्मिलित किया गया है। संगीत में एक सप्तक में 22 श्रुतियों की अवधारणा मान्य है।

नाद

वह ध्वनि जो मधुर, आनंददायक तथा कर्णप्रिय हो, नाद कहलाती है। धीरे से उत्पन्न ध्वनि को छोटा नाद और ज़ोर से उत्पन्न ध्वनि को बड़ा नाद कहते हैं।

9 भारत में रंगमंच कला
(Theatre forms in India)

भूमिका

प्रकृति में मानव अन्य जीवों से इस रूप में भिन्न है कि उसने अपनी भावना, संवेदना, उल्लास, करुणा, वात्सल्य, प्रेम, घृणा आदि को अभिव्यक्ति देने के लिये सांस्कृतिक जीवन का निर्माण किया है।

विभिन्न मानव समाजों में नृत्य, संगीत, रंगमंच व चित्रकला आदि का सृजन उसकी इन्हीं सांस्कृतिक अभिरुचियों के कारण हुआ। रंगमंच इन्हीं कला रूपों में से एक है जिसमें संगीत, नृत्य, चित्रकला एवं अभिनय के भरपूर प्रयोग द्वारा मानवीय भावनाओं, यथा-सुख-दु:ख, राग-द्वेष एवं प्रेम आदि की मंचीय प्रस्तुति की जाती है। वाचन, नृत्य एवं संगीत-रंगमंच के अभिन्न एवं आंतरिक अवयव होते हैं।

रंगमंच से तात्पर्य

रंगमंच शब्द 'रंग' और 'मंच' से मिलकर बना है। जहाँ 'रंग' का आशय मंचित दृश्य को आकर्षक और मनोहारी बनाने के लिये पर्दों, दीवारों व छतों पर रंगों के विविध प्रयोग से है, साथ ही इसका प्रयोग कलाकारों के पहनावे और उनके सौंदर्य को निखारने के लिये भी होता है, वहीं 'मंच' का अर्थ है-प्रदर्शित किये जा रहे नाटक और नृत्य को, दर्शकों की सुविधा के लिये एक ऊँचे स्थान पर प्रस्तुत करना, ताकि सब लोग उसे ठीक से देख सकें और उसका आनंद उठा सकें।

नाटकों में नटों के हाव-भाव, वेश-भूषा, संवादों आदि से घटनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसके अलावा नाटक का आशय ऐसे काव्य ग्रंथ से भी है जिसमें स्वांग के द्वारा दिखाए जाने वाले चरित्रों, व्यक्तित्वों का वर्णन हो, इसलिये नाटक को दृश्यकाव्य या अभिनय ग्रंथ भी कहा जाता है।

भारतीय रंगमंच के मूल स्रोत एवं स्वरूप

भारत में रंगमंच की जड़ें अत्यंत प्राचीन एवं गहरी हैं। आदिम या पौराणिक युगों से ही रंगमूलक कार्यकलाप भारतीय जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। वैदिकयुगीन यज्ञों से संबंधित कर्मकांडों में नाट्य जैसी स्थितियाँ विद्यमान थीं। संसार के प्राचीनतम ग्रंथों में से एक ऋग्वेद में यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, अगस्त्य-लोपामुद्रा, इंद्र-अदिति आदि अनेक संवादमूलक सूक्त मिलते हैं जो किसी-न-किसी प्रकार के नाटकीय संयोजन का आभास देते हैं। इसलिये वैदिक काल को हम रंगमंच कला का उद्भव काल मान सकते हैं।

अगर पुरातात्त्विक साक्ष्यों की बात की जाए तो शैल गुहाकार स्वरूप में भी संस्कृत रंगमंच के कुछ अवशेष मिले हैं। छत्तीसगढ़ के सरगुजा ज़िले में रामगिरि की पहाड़ियों पर स्थित सीतावेंगा एवं जोगीमारा गुफाओं में रंगशालाओं के चित्र मिलने से यह अनुमान लगाया जाता है, कि यहाँ प्राचीन काल में नाटक खेले जाते थे। फिर भी इन गुफाओं से मिले साक्ष्यों के आधार पर हम इसे संस्कृत का विकसित रंगमंच नहीं मान सकते।

संस्कृत रंगमंच

भारत में रंगमंच की समृद्ध परंपरा का आधार संस्कृत रंगमंच को माना जाता है। प्राचीन भारत में नाटकों के 2 प्रकार थे-

- लोकधर्मी- दैनिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण।
- नाट्यधर्मी- अत्यधिक प्रतीकों, परंपराओं द्वारा चित्रण।

ऐसी मान्यता है कि संस्कृत नाट्य की रचना इंद्र आदि देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने पाँचवें वेद के रूप में की है। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (बोल), सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से श्रृंगार आदि रस लेकर नाट्य ग्रंथ की रचना की। नाट्य ग्रंथ की रचना में शिव, पार्वती एवं विष्णु के सहयोग को भी स्वीकार किया गया है।

हालाँकि संस्कृत रंगमंच के विकसित स्वरूप का उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है जिसकी रचना पहली सदी में की गई तथा इसे विश्व के प्राचीनतम नाट्यशास्त्र के रूप में मान्यता प्राप्त है।

भारत में शास्त्रीय संस्कृत नाटकों का वैभवकाल पहली सदी से लेकर 1000 ईस्वी तक माना गया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

- संपूर्ण नाटक 5.7 कृत्यों में संपन्न होता था।
- अधिकांशत: शहरी जीवन पर केंद्रित होते थे।
- मुख्य विषयवस्तु-प्रेम एवं नायकवाद।
- संस्कृत रंगमंच शास्त्रबद्ध था जिसमें नाट्य प्रकारों रंगस्थल, अभिनय, मंच सज्जा एवं रंगोपकरणों के साथ ही शैली की भी परिभाषा निर्धारित थी।
- 'रस' इसका केंद्रीय तत्त्व था। हालाँकि भास ने अपने नाटकों में इस शास्त्र सीमा का बार-बार उल्लंघन किया है।
- संस्कृत नाटकों के आख्यान प्राय: किसी प्रसिद्ध कृति से लिये जाते थे जिसमें नायक प्राय: राजर्षि, राजा, विद्वान, वीर या प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष होता था।
- ग्रीक ट्रैजडी की भाँति दुखांत नाटकों की शास्त्रीय मनाही थी।
- क्लासिकल संस्कृत नाटकों का आरंभ विस्तृत पूजा एवं मंगलाचरण के साथ होता था।

10 भारतीय सिनेमा
(Indian Cinema)

संक्षिप्त परिचय

मानव समाज ने अपने विकास क्रम में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों का विकास किया है। बोलने, लिखने से लेकर चित्र बनाने के साथ चलचित्र (सिनेमा) विचारों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम के रूप में विकसित हुआ, साथ ही कला के विभिन्न रूपों, यथा- चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला इत्यादि वे साधन बने जिसने अमूर्त विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया। चूँकि मानव के विचार तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं, इसलिये स्वाभाविक रूप से उनकी अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम से संपादित होती है, उस पर तत्कालीन समय की छाप होती है। यही वज़ह है कि हर युग में कला की अपनी एक विशेषता होती है, जो न केवल तत्कालीन समाज का चित्रण करती है, बल्कि उसका वितान फंतासियों से लेकर एक आदर्श समाज की कल्पना तक विस्तृत होता है। सिनेमा भी इस नियम का अपवाद नहीं है अर्थात् यह भी अपने समय की विशेषताओं से युक्त होता है। साथ ही, सिनेमा मनोरंजन का भी एक साधन है। किसी समय के समाज के अध्ययन में यह तत्त्व काफी महत्त्वपूर्ण होता है कि उस समय मनोरंजन के कौन-कौन से साधन प्रचलित थे तथा उस समय मनोरंजन का स्वरूप कैसा था? मूक रूप में शुरू हुआ सिनेमा जल्द ही दृश्य-श्रव्य में परिणत हो गया तथा ज्यों-ज्यों तकनीक का विकास होता गया, सिनेमा का स्वरूप और भी उन्नत होता चला गया। पूंजी निवेश की प्रक्रिया ने भी फिल्म निर्माण के विषय को प्रभावित किया। यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि उदारीकरण के बाद जब जीवन गति तेज़ हो गई तब सिनेमा पर क्या प्रभाव पड़ा? साथ ही, उदारीकरण के साथ पूंजी के बढ़ते महत्त्व ने सिनेमा को कितना बदला? इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ यह भी है कि सिनेमा का स्वरूप कितना समावेशी है?

सिनेमा का इतिहास

थॉमस एडिसन ने अपने सहयोगी विलियम कैनेडी के साथ मिलकर पहले मोशन कैमरे 'कीनेटोग्राफ' का आविष्कार किया। यह काफी वज़नी था तथा इसका उपयोग करना अत्यंत ही कठिन था। आगे चलकर फ्राँस में 'लुमियर ब्रदर्स' ने अपेक्षाकृत अधिक उन्नत तकनीक से युक्त कैमरा बनाया जिसे 'सिनेमेटोग्राफ' कहा गया। यह उपयोग की दृष्टि से अधिक बेहतर आविष्कार था। इस प्रकार लुमियर ब्रदर्स ने 1895 में दुनिया की पहली फिल्म का प्रदर्शन पेरिस में किया। भारत में भी फिल्म का पहला प्रदर्शन लुमियर ब्रदर्स द्वारा 1896 में मुंबई के वाटसन होटल में किया गया। यह दिलचस्प है कि भारत में सिनेमा का प्रवेश प्रथम 6 माह के अंदर ही हो गया। हालाँकि इसके बाद लगभग 15 वर्षों तक किसी स्वदेशी प्रोडक्शन हाउस द्वारा फिल्मों का निर्माण न हो सका।

भारत में मूक फिल्मों का युग (1896–1930)

अगर फिल्म निर्माण के समय की दृष्टि से देखें तो 'श्री पुंडलिक' भारत में बनी प्रथम फिल्म थी जिसे रामचंद्र गोपाल 'दादासाहेब तोरणे' तथा एन.जी. चित्रे ने मिलकर बनाया था। यह फिल्म मई 1912 में प्रदर्शित की गई। हालाँकि यह भारत में बनी पहली फिल्म थी, किंतु इसे प्रथम फीचर फिल्म का दर्जा प्राप्त नहीं है। दरअसल, यह कोई फिल्म नहीं थी, बल्कि एक मराठी नाटक पुंडलिक को ही आयातित कैमरे की मदद से रिकॉर्ड कर लिया गया था। इस नाटक को एक ब्रिटिश कैमरामैन जॉनसन ने रिकॉर्ड किया था तथा इसका प्रदर्शन लंदन में भी किया गया था। इन्हीं सब वज़हों से इसे देश की प्रथम फिल्म नहीं कहा जाता है।

1913 में प्रदर्शित 'राजा हरिश्चंद्र' को देश की प्रथम फीचर फिल्म माना जाता है। इस फिल्म का निर्माण धुंडीराज गोविंद फाल्के ने किया था, जिन्हें दादा साहेब फाल्के के नाम से जाना जाता है।

दादा साहेब फाल्के

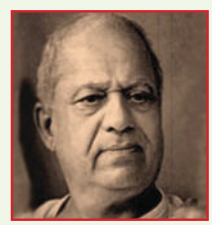

दादा साहेब फाल्के का पूरा नाम धुंडीराज गोविंद फाल्के है और इनका जन्म महाराष्ट्र के नासिक में 30 अप्रैल, 1870 ई. को हुआ था। मुंबई में 'अमेरिका-इंडिया थिएटर' में एक विदेशी मूक चलचित्र 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट' दिखाया जा रहा था, जिसे दादा साहेब ने देखा और फिल्म निर्माण का मन बना लिया। उन्होंने दादर में एक स्टूडियो बनवाया और फाल्के फिल्म के नाम से अपनी संस्था स्थापित की। 8 महीने की कठोर साधना के बाद दादा साहेब के द्वारा पहली मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण हुआ। इस फिल्म के निर्माता, लेखक, कैमरामैन इत्यादि सब कुछ दादा साहेब ही थे। इस फिल्म में काम करने के लिये कोई स्त्री तैयार नहीं हुई। अत: तारामती की भूमिका के लिये एक पुरुष पात्र ही चुना गया। दादा साहेब स्वयं नायक (हरिश्चंद्र) बने और रोहिताश्व की भूमिका उनके 7 वर्षीय पुत्र भालचंद्र फाल्के ने निभाई। यह फिल्म सबसे पहले मई 1913 में बंबई (वर्तमान मुंबई) के कोरोनेशन थिएटर में प्रदर्शित हुई। इसके बाद दादा साहेब ने दो और पौराणिक फिल्में 'भस्मासुर मोहिनी' और 'सावित्री' बनाई। 1937 में दादा साहेब ने अपनी पहली और अंतिम सवाक् फिल्म 'गंगावतरण' बनाई। दादा साहेब ने 120 से अधिक फिल्मों का निर्माण किया। 16 फरवरी, 1944 को 73 वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया।

मूक फिल्मों का निर्माण लगभग दो दशकों तक होता रहा तथा हज़ार के करीब फिल्में प्रदर्शित हुईं। मुंबई के अलावा बंगाल तथा दक्षिण भारत में भी मूक फिल्में बन रही थीं। नटराज मुदलियार की 'कीचकवधम' तथा जे.एफ. मदन की 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र' इस बीच बनी उल्लेखनीय

11 भारत की परंपरागत युद्धकलाएँ एवं खेल
(India's Traditional Martial Arts and Games)

भारत में युद्धकला

मूल रूप से 1920 के दशक में प्रचलन में आया 'मार्शल आर्ट' शब्द मुख्य रूप से एशिया में प्रचलित युद्ध के तरीकों और पूर्व एशिया में जन्मे लड़ाई के प्रकारों के संदर्भ में था। अत: इस रूप में मार्शल आर्ट या लड़ाई की कलाएँ, किसी शारीरिक हमले से बचाव के लिये प्रशिक्षण की परंपराएँ हैं। इनमें सिद्धहस्त होने के लिये नियमित अभ्यास और प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है। इस कला का उद्देश्य हमला करना नहीं, अपितु बचाव या खतरे से अपनी रक्षा करना होता है। मार्शल आर्ट को विज्ञान और कला दोनों माना जाता है। विज्ञान इसलिये क्योंकि इसके नियम निश्चित हैं और कला इसलिये कि इसमें कौशल की अभिव्यक्ति होती है। कुछ प्रसिद्ध भारतीय युद्धकलाओं का परिचय इस प्रकार है-

कलारिपयट्टू

कलारिपयट्टू दो शब्दों 'कलारि' और 'पयट्टू' के मेल से बना है- जिसका शाब्दिक अर्थ युद्ध की कला का अभ्यास होता है। ऐसी मान्यता है कि प्राचीन समय में यह युद्ध शैली अगस्त्य ऋषि एवं भगवान परशुराम द्वारा सिखाई जाती थी। इसके साथ ही, इस युद्धकला का वेदों में भी वर्णन मिलता है।

प्राचीन काल में 7 वर्ष से ऊपर के आयु वर्ग के बच्चों को इसका प्रशिक्षण दिया जाता था तथा इसे धार्मिक प्रथाओं में भी शामिल किया गया था। कलारिपयट्टू का उल्लेख संगम साहित्य में भी मिलता है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में दो मत प्रचलित हैं। कुछ लोग इसकी उत्पत्ति स्थल केरल को मानते हैं, जबकि कुछ पूरे दक्षिण भारत को इसके उत्पत्ति स्थल के रूप में स्वीकार करते हैं।

प्राचीन समय में यह युद्ध शैली मूल रूप से वन्य जीवों से अपनी रक्षा के लिये शुरू की गई थी। इस युद्ध के बहुत सारे लय और आसन, जानवरों की मुद्रा एवं उनकी ताकत से प्रेरित हैं तथा उनके नाम भी उन्हीं के नाम पर आधारित हैं। कालांतर में इस शैली का प्रयोग जानवरों के साथ लड़ने की बजाय मनुष्यों के साथ लड़ने में किया जाने लगा। प्रारंभ में इस युद्ध शैली में झुकने की मुद्रा का इस्तेमाल किया जाता था, वहीं बाद में खड़े होने वाले आसनों का भी विकास किया गया। भगवान परशुराम की शैली में हथियारों के उपयोग का विकास हुआ तथा सप्तऋषि अगस्त्य की शैली में हाथों से लड़ना कायम रहा।

इस रूप में केरल के मार्शल आर्ट 'कलारिपयट्टू' को विश्व में मार्शल आर्ट का सर्वाधिक प्राचीन और सबसे वैज्ञानिक रूप माना जाता है। लड़ाई का 'कलारि याती' नामक प्रशिक्षण स्कूल में दिया जाता है। कलारि के नियमों के तहत मार्शल आर्ट के प्रशिक्षण की शुरुआत शरीर की तेल-मालिश से की जाती है जो देह को फुर्तीला और लचीला बनाती है। इसके बाद चाट्टोम (कूद), ओट्टम (दौड़), मरिचिल (कलाबाज़ी) आदि करतब सिखाए जाते हैं, जिसके बाद कटार, तलवार, भाला, गदा, धनुष-बाण जैसे हथियार चलाने की विद्या सिखाई जाती है।

कलारिपयट्टू के प्रशिक्षण का उद्देश्य व्यक्ति के मन और शरीर के बीच बेहतरीन तालमेल स्थापित करना होता है। कलारि के पारंपरिक प्रशिक्षण में देशी चिकित्सा विधियों को भी शामिल किया जाता है। कलारि धार्मिक पूजन के भी केंद्र होते हैं। कलारिपयट्टू के सामान्य नियमों के तहत व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रशिक्षण पूरा होने के बाद भी तेल-मालिश और बाकी के व्यायाम जारी रखेगा।

इस प्रकार, कलारिपयट्टू सिर्फ युद्ध या हाथ-पैर चलाने की ही कला नहीं, बल्कि शरीर की ऊर्जा प्रणाली को समझने की भी कला है। इस युद्धकला में प्रचलित विभिन्न पद्धतियों का उपयोग चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में भी होने लगा है। विशेष तौर से औषधीय तेलों के साथ प्रशिक्षित कलारि।

भारत में युद्धकला, योग एवं नृत्य का करीबी रिश्ता माना जाता रहा है। इस रूप में कलारिपयट्टू का प्रभाव कथकली में भी दिखता है। ठीक इसी प्रकार कलारिपयट्टू का योग से भी रिश्ता है।

16 नवंबर, 2016 को छठे भारत-चीन संयुक्त प्रशिक्षण अभ्यास का आयोजन पुणे में किया गया। इस संयुक्त प्रशिक्षण अभ्यास में प्राचीन युद्धकला कलारिपयट्टू को भी शामिल किया गया।

सिलांबम

यह तमिलनाडु की प्रचलित युद्धकला है। प्राचीन काल में सिलांबम एक प्रकार की आयुध कला थी, जिसकी रोम एवं यूनान में काफी मांग थी। माना जाता है कि पांड्य शासकों ने इस कला को प्रश्रय दिया। इसका उल्लेख तमिल ग्रंथ शिलप्पादिकारम् में मिलता है। इसमें मुख्यत: लाठियों का प्रयोग होता है और कभी-कभी दूसरे प्रकार के अस्त्रों, जैसे-हिरण के सींगों का भी इस्तेमाल किया जाता है। इसे मिट्टी के मैदान में खेला जाता है।

जब इसे बिना शस्त्रों के खेलते हैं तो इसे 'कुट्टु वरिसई' कहा जाता है। तमिलनाडु की एक और युद्धकला का नाम 'वरमा कलाई' है और इसे कुट्टु वरिसई का ही आवश्यक अंग माना जाता है।

खंड 4

भारत की भाषाएँ, साहित्य, धर्म तथा दर्शन

- भारतीय भाषाएँ एवं लिपियाँ
- भारत की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
- धर्म एवं दर्शन

12 भारतीय भाषाएँ एवं लिपियाँ
(Indian Languages and Scripts)

भूमिका

भाषा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'भाष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है– 'वाणी की अभिव्यक्ति'। भाषा के माध्यम से ही मनुष्य के हाव-भाव एवं विचार व्यक्त हो पाते हैं अर्थात् इस रूप में भाषा सामाजिक मनुष्यों के बीच भावों एवं विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान का माध्यम है।

भाषा रूढ़ है। परंपरागत रूप से इसका प्रयोग कैसे शुरू हुआ इसका कोई निश्चित कारण नहीं है, किंतु स्थायी रूप से इसका प्रयोग होता आ रहा है। यह मौखिक एवं लिखित दोनों रूपों में होती है। विभिन्न भाषा विद्वानों ने भाषा की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं–

- "भाषा उन वाक्यों की व्यवस्था है जो आकार में सीमित होते हैं तथा सीमित तत्त्वों के परस्पर संयोग से निर्मित होते जाते हैं।"
  –नॉम चोम्स्की
- "उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की अभिव्यक्ति भाषा है।" *–आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा*

इस तरह, समग्र रूप में कहें तो मनुष्य एवं मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में, या अपनी इच्छा का आदान-प्रदान करने के लिये जो ध्वनियाँ व्यक्त की जाती हैं या ध्वनि संकेतों के बीच जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।

भारत के भाषायी परिवार

दुनियाभर में बोली जाने वाली करीब 7 हज़ार भाषाओं को लगभग 10 भाषा परिवारों में विभाजित किया गया है और इन 10 भाषा परिवारों में 4 भाषा परिवार की भाषाएँ मुख्य रूप से भारत में प्रयुक्त होती हैं– हिन्द आर्य भाषा समूह (भारोपीय भाषा परिवार की), द्रविड़ भाषा समूह, ऑस्ट्रोएशियाटिक भाषा समूह, चीनी-तिब्बती या नाग भाषा समूह। इसके अतिरिक्त हाल के वर्षों में भारत में अंडमानी भाषा परिवार की भी खोज हुई है। इस तरह कुल मिलाकर अब भारत में लगभग 5 भाषा-परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। जिसका विवरण निम्नलिखित है–

हिंद-आर्य भाषा परिवार

यह भाषा परिवार भारत में प्रयुक्त सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। यह हिंद-यूरोपीय भाषा परिवार से निकला है। भारत की तीन-चौथाई से अधिक जनसंख्या हिंद-आर्य भाषा परिवार की कोई-न-कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है। इसके अंतर्गत संस्कृत, हिंदी, उर्दू, मराठी, नेपाली, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी इत्यादि भाषाएँ आती हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार

यह भाषा परिवार भारत में प्रयोग होने वाला दूसरा सबसे बड़ा भाषा परिवार है। इस भाषा परिवार में सम्मिलित भाषाएँ अधिकांशतः दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। इस भाषा परिवार में शामिल सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा तमिल है जो तमिलनाडु में बोली जाती है। कर्नाटक में कन्नड़, केरल में मलयालम तथा आंध्र प्रदेश में प्रयुक्त तेलुगू भाषा इस भाषा परिवार के अंतर्गत आने वाली बड़ी भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के अतिरिक्त तुलू एवं ब्राहुई भाषाएँ भी इसी भाषा परिवार के अंतर्गत आती हैं। ब्राहुई भाषा अफ़ग़ानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारतीय कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रों में बोली जाती है।

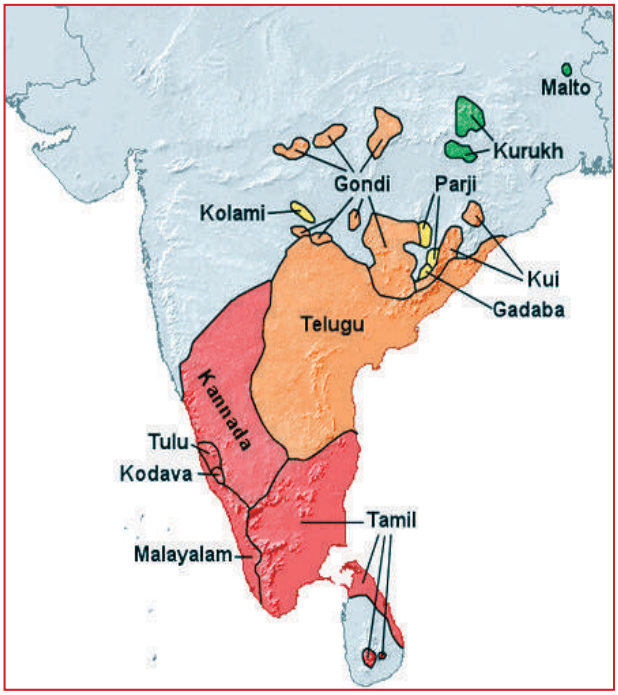

ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार

इस भाषा परिवार में सम्मिलित भाषाएँ मुख्य रूप से झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा एवं पश्चिम बंगाल के अधिकांश हिस्सों में बोली जाती हैं। जनसंख्या की दृष्टि से इस भाषा परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली है, जो पश्चिम बंगाल, झारखंड, ओडिशा तथा असम में मुख्य रूप से बोली जाती है। इस भाषा परिवार की अन्य भाषाएँ हैं– हो, मुंडारी, खड़िया, खासी, सावरा आदि।

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार की अधिकांश भाषाएँ उत्तर-पूर्वी राज्यों में बोली जाती हैं; जिसके अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर,

आरंभिक काल में इस लिपि के अक्षर समकोणीय दिखाई पड़ते थे, परंतु कालांतर में कन्नड़ एवं तेलुगू लिपि के प्रभावस्वरूप ये गोलाकार हो गए।

शारदा लिपि

कश्मीर राज्य की आराध्य देवी 'शारदा' के नाम पर इस लिपि को शारदा लिपि के नाम से जाना गया। व्हीलर का मानना है कि शारदा लिपि की उत्पत्ति गुप्त लिपि की पश्चिमी शैली से हुई है तथा इसके प्राचीनतम लेख 8वीं शताब्दी के हैं। इस विद्वान ने जालंधर के राजा जयचंद्र की कीरग्राम के बैजनाथ मंदिर में लगी प्रशस्तियों का काल 804 ई. माना है। इसी आधार पर इन्होंने शारदा लिपि के विकास को 800 ई. के आसपास निश्चित किया है।

वहीं, कील हॉर्न ने अपनी गणितीय गणनाओं से सिद्ध किया है कि ये प्रशस्तियाँ 12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की हैं, जबकि गौरीशंकर ओझा शारदा लिपि का आरंभ 10वीं शताब्दी से स्वीकार करते हैं। इनका मानना है कि नागरी लिपि की तरह ही शारदा लिपि का विकास भी कुटिल लिपि से हुआ है। इन्होंने शारदा लिपि का प्रथम अभिलेख सराहा (चंबा, हिमाचल प्रदेश) से प्राप्त प्रशस्ति को माना है जो कि 10वीं शताब्दी की है। राजा विदग्ध के सुमंगल गाँव के दानपत्र, सोम वर्मा के कुलैत दानपत्र, जालंधर के राजा जयचंद्र के काल की बैजनाथ मंदिर की प्रशस्तियों आदि में शारदा लिपि का प्रयोग किया गया है।

गुरुमुखी लिपि

गुरुमुखी लिपि पंजाबी भाषा में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख लिपि है। सिखों के दूसरे गुरु 'गुरु अंगद देव' द्वारा इस लिपि का विकास किया गया। सिखों के पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' की रचना इसी लिपि में की गई है।

गुरुमुखी लिपि मुख्य रूप से पंजाब राज्य में प्रयुक्त होती है, किंतु यह हरियाणा, जम्मू व कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली आदि राज्यों के कुछ हिस्सों में भी प्रचलित है।

गुजराती लिपि

यह लिपि संपूर्ण गुजरात में प्रयुक्त होती है तथा यह देवनागरी लिपि से विकसित हुई है। आरंभ में इस लिपि के अक्षरों के सिरों पर रेखाएँ दिखाई देती थीं, परंतु बाद में ये रेखाएँ लोप होती चली गईं।

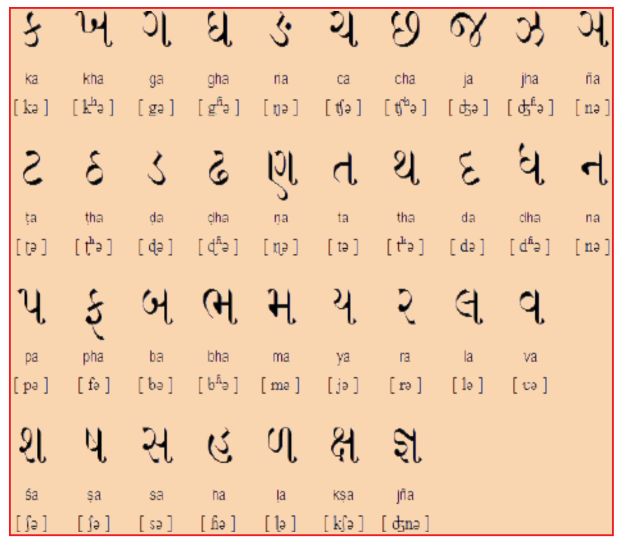

ग्रंथ लिपि

ग्रंथ लिपि का व्यापक रूप से प्रयोग छठी शताब्दी से 20वीं शताब्दी के बीच दक्षिण भारत में देखने को मिलता है। यह दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के अर्काट, मदुरै, सलेम, तिरूचिरापल्ली, तिरूनेलवेल्ली में व्यापक रूप से प्रचलित लिपि थी।

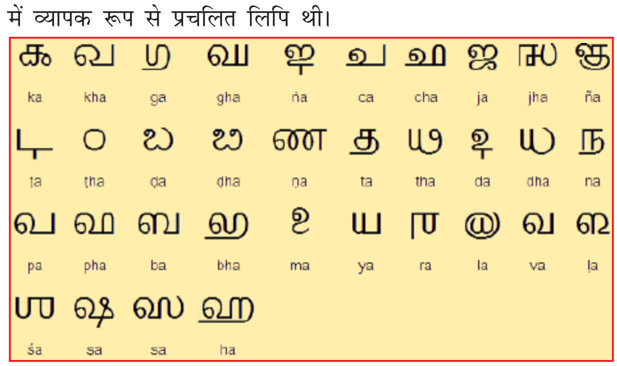

इस लिपि का प्रयोग दक्षिण भारत के पांड्य, पल्लव एवं चोल राजाओं ने अपने अभिलेखों में किया है। महाबलीपुरम् स्थित धर्मराज रथ

13 भारत की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
(India's Literary Tendencies)

भूमिका

मानव जीवन के विकास से ही लिपियों का आविष्कार भी जुड़ा है। किसी भी भाषा की लिखित अभिव्यक्ति और साहित्य निरूपण के माध्यम को लिपियों के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य अपनी संस्कृति, समाज, साहित्य और जीवनशैली के विभिन्न पहलुओं को लिपियों में निरूपित करता रहा है। प्रत्येक संस्कृति से संबद्ध लोगों ने स्वयं अपनी भाषा का विकास किया तथा इसके द्वारा अपनी समृद्ध साहित्यिक विरासत को सहेजने और संगृहीत करने का प्रयास किया।

आगे चलकर किसी समाज के सांस्कृतिक विकास के अध्ययन हेतु इन्हीं साहित्यिक विरासतों का उपयोग किया जाने लगा। इसे दूसरे रूप में कहें तो, किसी विशेष संस्कृति एवं उसकी परंपराओं को जानने हेतु उस समाज की भाषाओं के क्रमिक विकास एवं साहित्यिक विधाओं का अध्ययन ज़रूरी हो जाता है।

प्राचीन काल की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

संस्कृत साहित्य

संस्कृत हिंद-यूरोपीय भाषा परिवार की हिंद-ईरानी शाखा की हिंद-आर्य उप-शाखा में शामिल है। संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी है अर्थात् यह देश की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। पाणिनी द्वारा लिखित 'अष्टाध्यायी' संस्कृत भाषा के व्याकरण का प्राचीनतम और आधार ग्रंथ है।

प्राचीन काल में हिंदू धर्म से संबंधित लगभग सभी धर्म ग्रंथ इसी भाषा में लिखे गए, साथ ही हिंदुओं के धार्मिक कर्मकांडों से जुड़े सभी मंत्रों के संस्कृत भाषा में होने तथा इस रूप में पुरोहितों की भाषा होने के कारण इसे समाज में उच्च स्थिति प्राप्त थी। अगर इस भाषा के दूसरी भाषाओं पर प्रभाव की बात करें तो यह हिंदी, बांग्ला, मराठी, सिंधी, पंजाबी, तमिल, तेलुगू आदि भाषाओं पर दिखाई देता है।

वैदिक साहित्य

वैदिक साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। वेदों से आर्यों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के संबंध में जानकारी मिलती है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।

ऋग्वेद की रचना 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. के मध्य की गई थी। इसमें 10 मंडल एवं 1028 सूक्त हैं। ऋग्वेद में उल्लिखित मंत्रों को यज्ञ के अवसर पर होतृ नामक पुरोहित द्वारा उच्चारित किया जाता था। ऋग्वेद में लिखे गए अधिकांश सूक्त मानव जीवन के उच्चतम मूल्यों से संबंधित हैं तथा इसमें प्रकृति का बड़ा मनोरम चित्रण किया गया है।

वहीं, यजुर्वेद में धार्मिक कर्मकांड एवं इससे संबंधित मंत्रों का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद के मंत्रों को उच्चारित करने वाले पुरोहित को अध्वर्यु कहा जाता था। कर्मकांड से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने के कारण यह चारों वेदों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह वेद गद्य एवं पद्य दोनों में रचित है जिसमें तत्कालीन समय की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का वर्णन मिलता है।

सामवेद में ऋग्वैदिककालीन मंत्रों के संगीतमय उच्चारण करने की विधि का वर्णन है, इसलिये इसे 'भारतीय संगीत का जनक' भी कहा जाता है। वहीं अथर्ववेद मानव समाज की शांति एवं समृद्धि से संबंधित है। इसमें मनुष्य के दैनिक जीवन की चर्चा की गई है तथा 99 रोगों के उपचार की विधि का वर्णन है। अथर्ववेद को इस रूप में भी प्रसिद्धि प्राप्त है कि यह भारतीय सभ्यता के प्रारंभिक काल की धार्मिक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

इन चारों वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों का स्थान आता है। ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक कर्मकांड की विस्तृत व्याख्या, निर्देशन एवं यज्ञ विधान का वर्णन किया गया है। चारों वेदों के अपने ब्राह्मण ग्रंथ हैं। प्राचीन इतिहास के अध्ययन के साधन के तौर पर ऋग्वेद के पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों का स्थान आता है। इसमें तत्कालीन समय के सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन के विषय में जानकारी दी गई है।

आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट भाग हैं जिनमें दार्शनिक एवं रहस्यात्मक विषयों के साथ-साथ लोगों के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है।

उपनिषद्

उपनिषद्, आरण्यकों के पूरक एवं भारतीय दर्शन के प्रमुख स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये हमारी साहित्यिक विरासत के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें विश्व की उत्पत्ति, जीवन-मृत्यु, भौतिक व आध्यात्मिक जगत, ज्ञान के स्वरूप आदि के संबंध में चर्चा की गई है। उपनिषदों का केंद्रीभूत सिद्धांत 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' है, अर्थात् ब्रह्म ही आत्मा है और वही सत्य तथा इसके अलावा सब मिथ्या है। भारत के राष्ट्रीय प्रतीक, सारनाथ के 'सिंह स्तंभ' के नीचे लिखे 'सत्यमेव जयते' की उक्ति मुण्डकोपनिषद से ली गई है। उपनिषदों की कुल संख्या 108 है, किंतु प्रामाणिक उपनिषद् 12 ही हैं जिनमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, कौषितकि आदि प्रमुख हैं।

वेदांग

वेदांगों की संख्या 6 है- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष। ये गद्य के रूप में लिखे गए हैं। इनमें शिक्षा, वैदिक स्वरों के शुद्ध उच्चारण से; कल्प, विधि एवं नियम से; व्याकरण, नाम, धातु की रचना, उपसर्ग एवं प्रत्यय के प्रयोग से; निरुक्त, भाषा-विज्ञान से तथा ज्योतिष, ज्योतिषशास्त्र के विकास से संबंधित है।

14

धर्म एवं दर्शन
(Religion and Philosophy)

भूमिका

मनुष्य इस धरा का सर्वाधिक बौद्धिक प्राणी है। वह सोच सकता है, तर्क कर सकता है तथा गूढ़ से गूढ़तम समस्याओं एवं रहस्यों की तह तक चला जाता है। परंतु, मानव सदा से इतना समझदार, विवेकी और तर्कशील नहीं था। मानव-सभ्यता के प्रारंभिक काल में वह भी अन्य जीवों की तरह सिर्फ ज्ञानेंद्रियों (आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा) के ग्रहणबोध से प्रतिक्रिया देता था। आज वह बौद्धिक विकास के जिस स्तर पर है वहाँ तक पहुँचने में उसे हज़ारों वर्ष लग गए। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि बौद्धिक विकास की प्रक्रिया सदैव लंबवत रही है क्योंकि प्राचीन काल में भी इतने महान विद्वान और बौद्धिक ऋषि, योगी, धर्मोपदेशक हुए हैं जिनकी बौद्धिक क्षमता आज के मानव से कहीं अधिक थी। आदिगुरु शंकराचार्य, बुद्ध, कपिलमुनि जैसे अनेक महापुरुष उस श्रेणी में आते हैं। परंतु, यह अवश्य कहा जा सकता है कि आज के मनुष्य के पास तर्कशक्ति के साथ-साथ वे साधन भी मौजूद हैं जिनसे वह अपने मत को वैज्ञानिक तरीके से साबित कर सकता है।

धर्म और दर्शन के उद्भव और विकास को मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही समझा जाता है। धर्म सदा से ही दर्शन के लिये आधार बनता आया है। यदि आधुनिक भाषा विश्लेषणवादी दर्शन को छोड़ दें तो लगभग सभी दर्शनों की विषय-वस्तु धर्म और उससे जुड़ी धारणाएँ ही रही हैं।

'धर्म' और 'दर्शन' की अवधारणा को गहनता से समझने के लिये हम सर्वप्रथम धर्म और दर्शन को परिभाषित करने का प्रयास करते हैं।

धर्म

धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'धृ' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है- धारण करना। जो कुछ भी धारण करने योग्य है, वही धर्म है। विस्तृत अर्थों में धर्म से तात्पर्य 'कर्तव्यपालन' से है। हिंदू धर्म ग्रंथों में मनुष्यों से यह अपेक्षा की गई है कि वे अपने धर्म अर्थात् नैतिक कर्तव्यों का पालन करें। जैनियों ने धर्म शब्द का अर्थ 'विशेषता' से लगाया है। उनके 'अनेकांतवाद' सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक वस्तु में अनंत धर्म होते हैं अर्थात् अनंत विशेषताएँ होती हैं। बौद्धों ने सत्ता की व्याख्या चेतन और अचेतन धर्मों के रूप में की है।

धर्म शब्द को अंग्रेज़ी के 'Religion' का समानार्थी माना जाता है। इसमें 'Re' का आशय 'दोबारा' तथा 'ligion' का आशय 'बांधने' से है अर्थात् 'Religion' का अर्थ हुआ 'दोबारा से बांधना'। इसे धार्मिक अर्थ में आत्मा को परमात्मा से बांधने के रूप में देखा जाता है। इस आलोक में 'रिलिजन' वह अभिवृत्ति है जो अलौकिक सत्ताओं को मनुष्य के साथ भावनाओं और क्रियाओं के स्तर पर जोड़ती है। कुछ समाजशास्त्री, जैसे- पार्सन्स, दुर्खीम आदि के अनुसार विभिन्न समाजों में मनुष्य का जीवन व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये कुछ विश्वास, कर्मकांड और संस्थाएँ बनाई गई हैं, जिनको सम्मिलित रूप से धर्म कहा जा सकता है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि धर्म एक व्यापक अवधारणा है और इसे परिभाषित करना सरल नहीं है। किंतु, उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में धर्म को इस प्रकार परिभाषित करने का प्रयास किया जा सकता है-

"धर्म एक व्यापक अभिवृत्ति है, जिसमें किसी अलौकिक शक्ति या अवस्था में विश्वास, मनुष्य की भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति, कर्मकांड, नैतिक आचरण आदि पक्षों पर बल दिया जाता है तथा जो (धर्म) मनुष्य के जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है।"

दर्शन

जीवन और जगत के मूल कारण, वस्तुओं के मूल स्वरूप, लौकिक एवं पारलौकिक सत्ताओं के अस्तित्व, अनास्तित्व, जन्म-मरण-मुक्ति, वास्तविक ज्ञान का स्वरूप, उसकी सीमा व प्रामाणिकता आदि के संदर्भ में गहन बौद्धिक चिंतन एवं अध्ययन ही दर्शन है। दर्शन का अंग्रेज़ी पर्यायवाची 'Philosophy' है जिसका शाब्दिक अर्थ है- ज्ञान के प्रति अनुराग। इस प्रकार दर्शन को ऐसी जीवन दृष्टि या जीवन पद्धति के रूप में देखा जा सकता है जिसमें ज्ञान के प्रति विशेष अनुराग दिखाई देता है।

सामान्य अर्थों में कहा जाए तो, जहाँ धर्म आंतरिक अनुभूतियों के महत्त्व को प्रकट करता है जिससे जीवन के अर्थ और उद्देश्य का ज्ञान होता है, वहीं जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा को बाह्य गतिविधियों से परे रखता है, आंतरिक रूप में एकीकृत करता है तो उसे अद्भुत व पवित्र अनुभव प्राप्त होते हैं, जिसे दर्शन कहा जा सकता है।

ईसवी सन् के आरंभ तक जैन और बौद्ध दर्शन के अलावा भारतीय दर्शन के छह संप्रदाय (पद्धतियाँ) विकसित हो चुके थे, जिन्हें 'षड्दर्शन' कहा जाता है। षड्दर्शन को हिंदू दर्शन, वैदिक दर्शन या आस्तिक दर्शन भी कहा जाता है। नीचे दर्शन और उनके प्रणेता के नाम दिये जा रहे हैं-

- सांख्य दर्शनः महर्षि कपिल
- योग दर्शनः महर्षि पतंजलि
- न्याय दर्शनः महर्षि गौतम
- वैशेषिक दर्शनः महर्षि कणाद
- पूर्व मीमांसाः महर्षि जैमिनी
- उत्तर मीमांसा (वेदांत): महर्षि बादरायण

इनके अतिरिक्त, ई. पू. छठी सदी के आस-पास चार्वाक हुए जिन्होंने एक भौतिकवादी दर्शन 'चार्वाक दर्शन' या 'लोकायत' का प्रतिपादन किया। उनका मत है कि जिसका अनुभव मनुष्य अपनी इंद्रियों द्वारा नहीं कर सकता, उसका वास्तव में अस्तित्व ही नहीं होता।

इन सभी प्रमुख दार्शनिक पद्धतियों को वेदों में विश्वास रखने या न रखने के आधार पर आस्तिक या नास्तिक दो श्रेणियों में बाँटा गया।

आस्तिक दर्शनः इसके अंतर्गत षड्दर्शन आते हैं- सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा।

नास्तिक दर्शनः वे भारतीय दर्शन जो वेदों में विश्वास नहीं रखते हैं। इसके अंतर्गत चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन को रखा जाता है।

खंड

5

भारत में शैक्षणिक एवं तकनीकी विकास

- भारत में शिक्षा
- भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास

15 भारत में शिक्षा
(Education in India)

भूमिका

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में शिक्षा से संबंधित एक लोक प्रचलित वाक्य का प्रयोग होता आया है– 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् हमें अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले चलो। यहाँ मनुष्य ज्ञान रूपी प्रकाश से अपने जीवन-पथ को आलोकित करना चाहता है, जिससे वह अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास कर पाए।

कालांतर में इसी ज्ञान रूपी पुंज को मनुष्य ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक एक व्यवस्थित प्रक्रिया के तहत पहुँचाने का प्रयास किया और यह शिक्षा के रूप में प्रसिद्ध हुई। शिक्षा को ज्ञानवर्द्धन का साधन, सांस्कृतिक जीवन का माध्यम, चरित्र निर्माता तथा जीविकोपार्जन का द्वार माना जाता है। किंतु अंतिम रूप से शिक्षा का उद्देश्य सांस्कृतिक ज्ञान की प्राप्ति होना चाहिये, जो कि मनुष्य को सभ्य एवं संयत बनाए। जिससे वह साहित्य, संगीत एवं कला के विकास में अपना यथेष्ट योगदान देने के योग्य बन सके तथा इन्हें अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिये सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पेश कर सके।

अगर हम शिक्षा एवं संस्कृति के बीच संबंधों की बात करते हैं तो पिछली पीढ़ियों से विरासत में प्राप्त होने वाले अनुभवों एवं उपलब्धियों के सार को संस्कृति कहते हैं, वहीं सामूहिक रूप से जुटाए गए इन्हीं अनुभवों एवं उपलब्धियों को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया शिक्षा कहलाती है। इस रूप में शिक्षा न सिर्फ सांस्कृतिक धारणाओं का प्रसार करती है, बल्कि यह स्वयं भी विभिन्न सांस्कृतिक धारणाओं से प्रभावित होती है। इसे दूसरे रूप में कहें तो चूँकि शिक्षा का जन्म संस्कृति से हुआ है, इसलिये संस्कृति में बदलाव आने के साथ ही शिक्षा पद्धति में भी बदलाव देखने को मिलता है। इस अध्याय के अंतर्गत हम विभिन्न युगों में शिक्षा की प्रकृति एवं उद्देश्यों में आने वाले बदलावों का अध्ययन करेंगे।

प्राचीन युग में शिक्षा

वैदिककालीन शिक्षा

वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश का स्रोत कहा गया, क्योंकि यह मानव जीवन के लिये पथ-प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन करती है।

इस काल में शिक्षा के प्रमुख केंद्र ऋषि-मुनि एवं आचार्यों के आश्रम थे, जिन्हें 'गुरुकुल' कहा जाता था। यह गुरुकुल शिक्षकों का निवास स्थान होता था, जहाँ आचार्य छात्रों के आवास, भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था करते थे। गुरुकुल में शिक्षा नि:शुल्क दी जाती थी अर्थात् शिक्षा की शुरुआत में आचार्य छात्रों से किसी प्रकार का धन, वस्तु आदि स्वीकार नहीं करते थे। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् छात्र अपने सामर्थ्यानुसार गुरु को गुरु-दक्षिणा के रूप में धन, गोधन, भूमि, वस्तुएँ आदि प्रदान करते थे।

वैदिक काल में संस्कारों का काफी महत्त्व था। इस समय प्रचलित 16 संस्कारों में से 4 संस्कार शिक्षा से संबंधित थे– विद्यारंभ संस्कार, उपनयन संस्कार, वेदारंभ संस्कार व समावर्तन संस्कार।

बालक के शिक्षा आरंभ करने से लेकर औपचारिक रूप से गुरुकुल छोड़ने तक ये 4 संस्कार संपन्न होते थे। उपर्युक्त चारों संस्कारों में उपनयन संस्कार सबसे महत्त्वपूर्ण था। उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक का दूसरा जन्म माना जाता था तथा उस बालक को 'द्विज' कहा जाता था।

छात्र की गुरुकुल शिक्षा का आरंभ उपनयन संस्कार से होता था। संपूर्ण अध्ययन काल 10 वर्ष निर्धारित था। गुरुकुल की शिक्षा पूरी करने के पश्चात् तथा गुरुकुल छोड़ते समय छात्र का 'समावर्तन संस्कार' होता था। इस संस्कार के पूर्ण हो जाने के पश्चात् छात्र 'ब्रह्मचर्य आश्रम' का त्याग कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

वैदिक काल में शिक्षा वर्णानुरूप दी जाती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के बालकों की शिक्षा आरंभ करने की आयु भी अलग-अलग निर्धारित थी। अलग-अलग वर्ण के बालकों के लिये वेश-भूषा संबंधी नियम भी अलग-अलग थे। पूर्व वैदिक काल में जहाँ बालकों को अपनी रुचि एवं योग्यता के आधार पर विषय चुनने की स्वतंत्रता प्राप्त थी, वहीं उत्तर वैदिक काल में विषय एवं पाठ्यक्रम वर्णानुसार निर्धारित होने लगे। छात्र की शिक्षा का मूल्यांकन आचार्य द्वारा किया जाता था। इस समय तक परीक्षा प्रणाली का अस्तित्व नहीं था और न ही प्रमाणपत्र या उपाधि देने की परंपरा का विकास हो पाया था।

वैदिक काल में शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। इस काल में सह-शिक्षा का भी अस्तित्व था तथा स्त्रियाँ भी इस काल में शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारी थीं। आगे चलकर उत्तर वैदिक काल में स्त्री शिक्षा को हतोत्साहित करने के प्रमाण मिलने लगे।

पूर्व वैदिक काल एवं वैदिक काल में समाज रूढ़ियों से मुक्त था। उत्तर वैदिक काल में समाज में ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित करने के पश्चात् अनेक विषमताओं ने जन्म लिया। वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित हो गई। स्त्री को समाज में द्वितीय श्रेणी का दर्जा देकर कई प्रकार के बंधनों में बांध दिया गया। वैदिक परंपराओं के स्थान पर स्वयं ब्राह्मणों के द्वारा बनाए गए नियमों से समाज का संचालन किया जाने लगा। यही कारण था कि यह काल 'ब्राह्मण काल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समय समाज में अंतर्निहित दोषों से प्रभावित या पीड़ित होने वाले वर्गों में निराशा का भाव व्याप्त था। ऐसे समय में भारत की भूमि पर दो धार्मिक संप्रदायों का उद्भव हुआ– बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म ने समाज में घर कर चुकी विषमताओं (चाहे सामाजिक विषमता की बात हो या धार्मिक विषमता की) का पुरज़ोर विरोध किया। बौद्ध धर्म के 'मध्यम मार्ग' ने लोगों को अपनी ओर

16 भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास (Development of Science and Technology in India)

भूमिका

किसी भी देश की सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को समझने के क्रम में उस देश की विज्ञान एवं तकनीक की उपलब्धियों को भी समझ लेना ज़रूरी होता है। सामान्यत: ऐसी धारणा है कि विज्ञान एवं तकनीक का संस्कृति से कोई सीधा संबंध नहीं होता, परंतु वास्तविकता यही है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को समझे बिना आधुनिक समाज की सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना का सम्यक् अध्ययन भी संभव नहीं है। विज्ञान एवं तकनीक वर्तमान समय और समाज को दिशा देने के महत्त्वपूर्ण आधार हैं। यह आज की विकासवादी संस्कृति का विशेषीकृत दस्तावेज़ है। यदि कोई राष्ट्र, समुदाय या नस्ल किसी दूसरे राष्ट्र, समुदाय या नस्ल पर सैकड़ों वर्षों तक शासन करता है तो इसका कारण बौद्धिक या सांस्कृतिक श्रेष्ठता नहीं बल्कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी उत्कृष्टता है। इतिहास साक्षी रहा है कि उसी देश ने विश्व पर प्रभुत्व जमाया है, जिसकी तकनीकी दक्षता सर्वश्रेष्ठ रही है।

यद्यपि भारत की विज्ञान एवं तकनीक की विरासत काफ़ी समृद्ध रही है, फिर भी भारत सदियों तक विदेशी शक्तियों के अधीन रहा। इसका कारण भारत का समय के सापेक्ष तकनीकी पिछड़ापन था। प्राचीन विश्व को अगर देखें तो उस समय तक भारत तकनीक के कई मामलों में अन्य देशों से श्रेष्ठ था, परंतु पुनर्जागरण काल के बाद जो तकनीकी दक्षता का अंतराल उत्पन्न हुआ, वह खाई आज तक नहीं पाटी जा सकी है। पुनर्जागरण काल के दौरान यूरोपीय देशों ने विभिन्न भौगोलिक खोजें कीं, छापेखाने का आविष्कार हुआ, श्रेष्ठतम नौवहन प्रणाली विकसित की, धार्मिक आंदोलनों से विचारों में प्रगतिशीलता आई, जिससे उनका बौद्धिक उत्थान हुआ। पुनर्जागरण काल की इन तकनीकी उपलब्धियों की बदौलत यूरोपीय देशों ने अन्य देशों पर शासन किया। इसी तरह, औद्योगिक क्रांति के दौरान जब यूरोप और अमेरिका ने इसका जमकर लाभ उठाया और प्रगति के शिखरों पर जा बैठे, उस समय भारत गुलामी के बोझ से दबा, उनके लिये एक बाज़ार मात्र बनकर रह गया। औद्योगिक क्रांति ने भी तकनीकी के अंतराल को और अधिक गहरा कर दिया। औपनिवेशिक शासन ने भारत की प्राचीनतम वैज्ञानिक-तकनीकी उपलब्धियों को ज़मींदोज़ कर देने की भरपूर कोशिश की। जानकर आश्चर्य होता है कि विश्व के कई प्रसिद्ध आविष्कार एवं सिद्धांतों की चर्चा भारत के अन्वेषकों ने हज़ारों वर्ष पूर्व कर दी थी, परंतु औपनिवेशिक दासता से शापित भारत उन सिद्धांतों की वैश्विक मान्यता न ले पाया। जिस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को हम पाश्चात्य वैज्ञानिक न्यूटन की देन मानते हैं, इसकी पुष्टि न्यूटन से सैकड़ों वर्ष पूर्व ब्रह्मगुप्त ने कर दी थी। आर्यभट्ट ने कॉपरनिकस से सैकड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी की गोल आकृति और इसके धुरी पर घूमने की बात सिद्ध कर दी थी। खगोल शास्त्र, गणित, भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, धातु विज्ञान तथा विभिन्न तकनीकों एवं कई प्रमुख अधुनातन सिद्धांतों का ज़िक्र भारत के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

प्राचीन भारतीय इतिहास अपनी सांस्कृतिक संपन्नता के लिये ही नहीं अपितु ज्ञान, विज्ञान और दर्शन के लिये भी विख्यात रहा है, जिसमें गणित, रसायन शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि का पर्याप्त विकास हुआ। अत: इनसे प्राप्त परिपक्व ज्ञान-विज्ञान ने भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण विकास में भी भूमिका निभाई है। प्रागैतिहासिक दौर से निकलने के बाद जो मानवीय सभ्यता विकसित हुई, उसमें सभ्यता के तीन मुख्य केंद्र थे- मिस्र, पश्चिमी एशिया और भारत। सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि यह एक उन्नत संस्कृति वाली सभ्यता थी। पुरातात्त्विक साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि ईसा से लगभग 3000-4000 वर्ष पूर्व प्रथम तकनीकी क्रांति हुई थी।

इस काल के प्रमुख आविष्कारों में आग का प्रयोग, बाढ़ नियंत्रण, कृषि के लिये हल तथा सिंचाई की तकनीकों का विकास, पशुपालन, धातुओं को पिघलाकर उन्हें विभिन्न रूप देने की तकनीक, पहिये की खोज और कुम्हार का चाक आदि शामिल थे। इस काल में भारत तकनीकी स्तर पर काफी संपन्न था। नगरों के वास्तुशिल्प, नगर नियोजन और स्थापत्य काफी उन्नत अवस्था में थे। सिंचाई, धातुकर्म, ईंट निर्माण तथा क्षेत्र एवं मात्रा मापन में वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया जाता था।

प्राचीन काल में भारत में विज्ञान एवं तकनीक के विभिन्न क्षेत्रों का खंडवार विश्लेषण

गणित

प्राचीन गणितीय समझ के साक्ष्य सिंधु घाटी सभ्यता में देखे जा सकते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के स्थलों में गणितीय सिद्धांतों पर आधारित कई कलारूप प्राप्त हुए हैं। बड़ी संख्या में पैमाने (स्केल) भी प्राप्त हुए हैं, जिनका प्रयोग संभवत: लंबाई के मापन में किया जाता था। अनुमान लगाया जाता है कि इन पैमानों का प्रयोग भवनों एवं अन्य ढाँचों के निर्माण में सटीकता के लिये किया जाता होगा। मूल रूप से गणित का विकास वैदिक काल से माना जाता है।

बौद्ध और जैन धर्मों के विकास के साथ-साथ छठी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास गणित के क्षेत्र में भी विकास हुआ। गणित की 'सशून्य दशांश गणना विधि', आर्यभट्ट द्वारा वर्गमूल, घनमूल निकालने की विधि 'ज्या' (Sine) सिद्धांत तथा ब्रह्मगुप्त द्वारा वृत्तस्थ चतुर्भुज की विशेषताओं को खोजने के साथ-साथ वर्गमूल का व्यवस्थित विकास भी प्राचीन भारत की महान उपलब्धियाँ रही हैं। इसी दौरान संख्या पद्धति, अंकगणित,

Think IAS | दृष्टि The Vision | Think Drishti

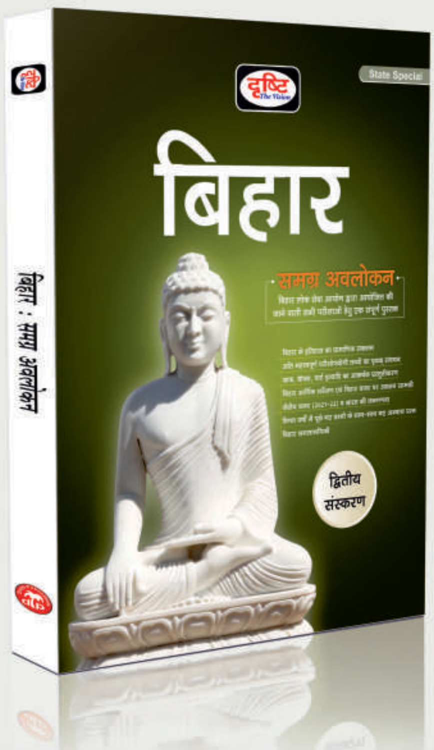

दृष्टि पब्लिकेशन्स
की शानदार प्रस्तुति

प्रमुख आकर्षण

- बिहार के इतिहास का प्रामाणिक संकलन
- अति महत्त्वपूर्ण परीक्षोपयोगी तथ्यों का पृथक् संचयन
- ग्राफ, बॉक्स, चार्ट इत्यादि का आकर्षक प्रस्तुतीकरण
- केंद्रीय व राज्य बजट पर अद्यतन सामग्री
- पूर्व में पूछे गए प्रश्नों के साथ-साथ नए अभ्यास प्रश्न
- पिछले एक वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकलन

दृष्टि पब्लिकेशन्स
की शानदार प्रस्तुति
बी.पी.एस.सी.
मुख्य परीक्षा : सामान्य अध्ययन

प्रमुख आकर्षण

- सामान्य अध्ययन के संपूर्ण पाठ्यक्रम का समावेशन
- सांख्यिकी पर विशेष फोकस
- कला एवं संस्कृति का आकर्षक प्रस्तुतीकरण
- बिहार राज्य से संबंधित सभी विषयों पर अद्यतन सामग्री
- प्रौद्योगिकी विकास पर संक्षिप्त एवं सटीक सामग्री
- मुख्य परीक्षा हेतु अभ्यास प्रश्न

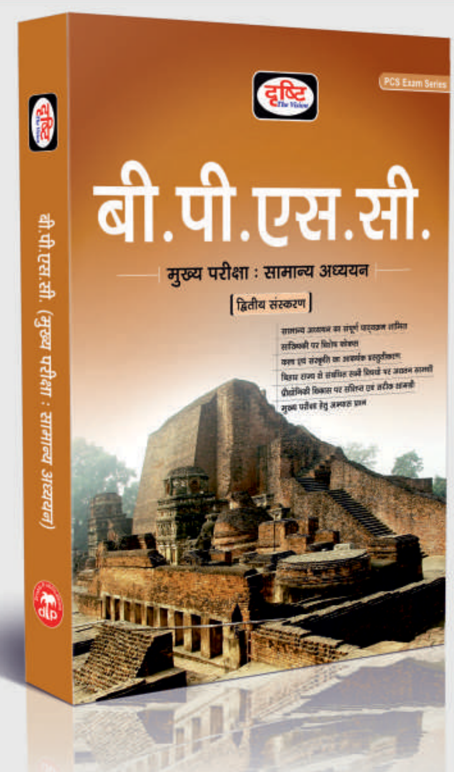

641, Ist Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9 Ph.: 87501 87501, 011-47532596
E-mail: online@groupdrishti.com, info@drishtiias.com, *Website: www.drishtiias.com

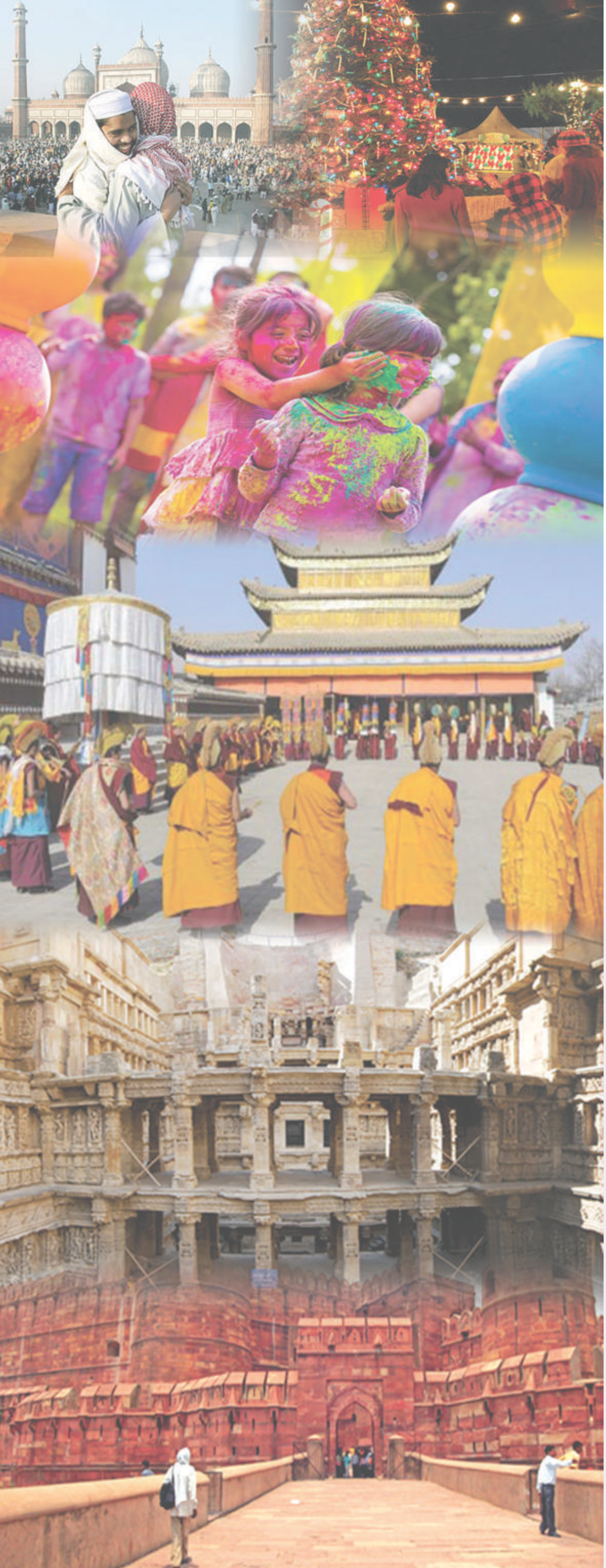

खंड

6

विविध

- भारत के मेले एवं त्योहार
- भारत के सांस्कृतिक संस्थान
- भारत में यूनेस्को की सांस्कृतिक धरोहर
- भारतीय संस्कृति संबंधित विविध कानून
- सम्मान एवं पुरस्कार
- कैलेंडर एवं पंचांग

17 भारत के मेले एवं त्योहार
(Fairs and Festivals of India)

भूमिका

भारत मेलों और त्योहारों का देश है। हमारे देश में विभिन्न समुदाय अपने-अपने धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों के साथ परस्पर प्रेम और भाईचारे के साथ निवास करते हैं। हर धर्म से जुड़े लोगों के अपने सांस्कृतिक और पारंपरिक त्योहार हैं। इनमें से अनेक त्योहार मौसम में आने वाले सालाना परिवर्तनों और उनके साथ गुँथे फसल-चक्र से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिये, पूरे देश में बसंत ऋतु के आने का उत्सव स्थानीय विविधताओं व कलेवर के साथ मनाया जाता है पर इन सबमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा का तत्त्व समान रूप से विद्यमान है।

त्योहार भाग-दौड़ वाली ज़िंदगी से थोड़ा समय निकालकर लोगों को अपने प्रियजनों के साथ मिल-बैठने का मौका उपलब्ध कराने के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव बढ़ाने में भी सहायक होते हैं।

त्योहारों की महत्ता इस बात में भी है कि वे नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक विरासत से न सिर्फ परिचित कराते हैं, बल्कि उन्हें परंपरा का वाहक बनने के लिये भी तैयार करते हैं। भारत के प्रमुख त्योहार, मेले व महोत्सव निम्नलिखित हैं-

राष्ट्रीय पर्व

गणतंत्र दिवस

26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अंगीकार किया व अगले वर्ष 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान को लागू किया गया। संविधान को लागू करने हेतु इस तिथि का चुनाव करने के पीछे ऐतिहासिक कारण भी है। उल्लेखनीय है कि 31 दिसंबर, 1929 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 26 जनवरी, 1930 को 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की गई थी। अत: जब भारतीय संविधान बनकर तैयार हुआ तो इसे लागू करने के लिये 26 जनवरी, 1950 के दिन का चुनाव किया गया।

इस दिन दिल्ली में 'राजपथ' पर एक भव्य परेड का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश की सैन्य क्षमता और सांस्कृतिक विविधता को दर्शाने वाली झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। गणतंत्र दिवस समारोह का समापन 29 जनवरी को, तीनों सेनाओं के संयुक्त बैंड के 'बीटिंग रिट्रीट' कार्यक्रम के साथ होता है। इस दिन पूरे देश में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

स्वतंत्रता दिवस

एक लंबे स्वतंत्रता संघर्ष के बाद भारत को 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्ति मिली। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'लाल किले' की प्राचीर से राष्ट्रीय ध्वज फहराया व देश के नागरिकों को संबोधित किया। तब से प्रतिवर्ष 15 अगस्त को देश के प्रधानमंत्री 'लाल किले' पर ध्वजारोहण करते हैं व देश को संबोधित करते हुए, स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक की उपलब्धियों और भविष्य की चुनौतियों के बारे में बताते हैं। इसके उपरांत सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन पूरे दिन चलता है। इसी प्रकार के कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में भी आयोजित किये जाते हैं, जिनमें देश की संस्कृति को दर्शाने वाले रंगारंग कार्यक्रम भी होते हैं।

गांधी जयंती

महात्मा गांधी का जन्मदिवस प्रतिवर्ष 2 अक्तूबर को पूरे देश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। अपने अहिंसात्मक आंदोलनों द्वारा देश को आज़ादी दिलाने में केंद्रीय भूमिका निभाने वाले महात्मा गांधी को देश, 'राष्ट्रपिता' के तौर पर याद करता है। इस दिन राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री सहित देश के शीर्ष अधिकारी उनकी समाधि पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं; इसके साथ ही देश में गांधीजी की विचारधारा से संबंधित व्याख्यानों और सेमिनारों का भी आयोजन किया जाता है।

गांधीजी की विचारधारा को महत्त्व देते हुए, 'संयुक्त राष्ट्र महासभा' की जनरल असेंबली ने 15 जून, 2007 को गांधीजी के जन्मदिवस (2 अक्तूबर) को प्रतिवर्ष 'अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप में मनाए जाने की घोषणा की।

धार्मिक पर्व

हिंदू त्योहार

मकर संक्रांति

मकर संक्रांति हिंदुओं का एक प्रमुख पर्व है। यह हिंदुओं का एकमात्र ऐसा त्योहार है, जो प्रतिवर्ष निश्चित अंग्रेज़ी तिथि से अर्थात् 14 जनवरी (कुछ अपवादों को छोड़कर जब यह 13 या 15 जनवरी को मनाया जाता है) को मनाया जाता है। इस अवसर पर लोग प्रात: गंगा या अन्य पवित्र नदियों में स्नान करते हैं व सूर्य भगवान की आराधना करते हैं।

यह वह समय होता है जब सूर्य उत्तरायण होना प्रारंभ करता है। हिंदू पंचांग के अनुसार 14 जनवरी को सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है।

ऋतु परिवर्तन की आहट और फसल अच्छी होने की प्रसन्नता में यह पर्व लगभग पूरे भारत में क्षेत्रीय रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के साथ मनाया जाता है; जैसे- पंजाब में 'लोहड़ी', तमिलनाडु में 'पोंगल', असम में 'बिहू' तथा आंध्र प्रदेश में 'भोगी' के रूप में।

18

भारत के सांस्कृतिक संस्थान
(Cultural Institutions of India)

भूमिका

किसी भी राष्ट्र के लिये उसकी संस्कृति एवं विरासत उसके अभिन्न एवं अमूल्य हिस्से होते हैं। प्रत्येक देश अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं परिरक्षण करने का प्रयास करता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 49 राष्ट्रीय महत्त्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण का दायित्व राज्य को सौंपता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51क(च) लोगों का यह मौलिक कर्त्तव्य मानता है कि वे देश की सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझेंगे और उसका परिरक्षण करेंगे।

भारत सरकार का 'संस्कृति मंत्रालय' देश में विरासत एवं संस्कृति के संरक्षण, विकास एवं संवर्द्धन के लिये ज़िम्मेदार शीर्ष निकाय है। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने का भी कार्य करता है।

महत्त्वपूर्ण संस्थान

ललित कला अकादमी

5 अगस्त, 1954 को भारत सरकार द्वारा ललित कला अकादमी, मुख्यालय दिल्ली (रवीन्द्र भवन) में स्थापना की गई और 11 मार्च, 1957 को इसका पंजीकरण समिति पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत किया गया।

- भारत में दृश्य कलाओं के क्षेत्र में ललित कला अकादमी शीर्ष सांस्कृतिक संस्था है।
- यह एक स्वायत्तशासी संस्था है जो पूर्णतया संस्कृति मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित है।
- यह पेंटिंग, मूर्तिकला, चीनी-मिट्टी की कलाओं, ग्राफिक कला, जनजातीय कलारूपों आदि के अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित करती है।
- अकादमी के लखनऊ, कोलकाता, चेन्नई, नई दिल्ली, शिमला, भुवनेश्वर, शिलॉन्ग में क्षेत्रीय केंद्र हैं; जिन्हें राष्ट्रीय कला केंद्र कहा जाता है।
- अकादमी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन करती है और छात्रवृत्तियाँ व अकादमी रत्न सदस्यता प्रदान करने हेतु योग्य व्यक्तियों का चयन करती है।
- अकादमी का स्थायी संग्रह भारतीय समकालीन और आधुनिक कला की रहस्योद्घाटक प्रवृत्तियों, जटिलताओं और सजीवता को प्रतिबिंबित करता है।

संगीत नाटक अकादमी

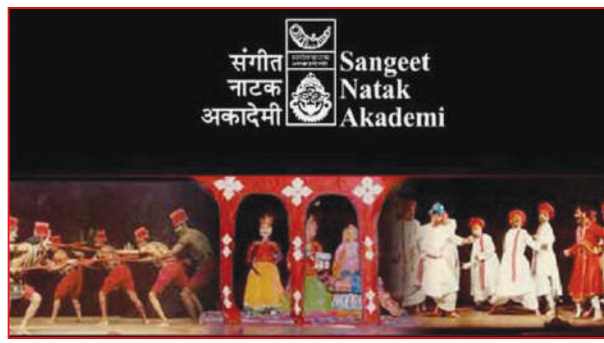

संगीत नाटक अकादमी, भारत सरकार द्वारा स्थापित संगीत, नृत्य एवं नाटक की राष्ट्रीय अकादमी है। 31 मई, 1952 को इसका गठन किया गया था। 11 सितंबर, 1961 को इसका पुनर्गठन, समिति पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत एक सोसायटी के रूप में किया गया।

- प्रदर्शन कला में विशेषज्ञता प्राप्त शीर्ष संस्था के रूप में अकादमी प्रदर्शन कला से संबंधित नीतियाँ और कार्यक्रम बनाने में भारत सरकार को परामर्श और सहयोग प्रदान करती है।
- अकादमी भारत के विभिन्न क्षेत्रों और भारत व विश्व के बीच सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने की ज़िम्मेदारी भी निभाती है।
- अकादमी देश में संगीत, नृत्य व नाटक के क्षेत्र में भारत की विभिन्न संस्कृतियों की विस्तृत अमूर्त परंपराओं के संरक्षण और संवर्द्धन के लिये प्रतिबद्ध संस्था है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अकादमी भारत सरकार और विभिन्न राज्यों तथा संघशासित क्षेत्रों तथा प्रमुख सांस्कृतिक संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करती है।
- 1959 में अकादमी के अधीन 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' की स्थापना की गई थी जो अब एक स्वायत्त संस्थान है।
- इंफाल स्थित, जवाहरलाल नेहरू मणिपुर डांस अकादमी (1954) और नई दिल्ली स्थित, कथक केंद्र (1964) अकादमी के अधीन स्थापित नृत्य प्रशिक्षण के लिये समर्पित संस्थान हैं।

19

भारत में यूनेस्को की सांस्कृतिक धरोहर
(UNESCO Cultural Heritage In India)

विश्व विरासत

सांस्कृतिक व प्राकृतिक धरोहर, मानव और प्रकृति की सृजनशीलता के जीवंत उदाहरण हैं तथा देशों की सीमाओं से परे ये संपूर्ण मानव समाज की साझी विरासत हैं। ये विरासतें न सिर्फ हमारे साझे अतीत का हिस्सा हैं, बल्कि एक धारणीय वैश्विक समाज के निर्माण में भी इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

विश्व विरासत को संरक्षित करने के उद्देश्य से यूनेस्को की महासभा ने पेरिस में विश्व की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासतों से संबंधित अभिसमय को 16 नवंबर, 1972 को स्वीकृत किया। इस 'अभिसमय' का उद्देश्य विश्व के ऐसे स्थलों को चयनित एवं संरक्षित करने में सहयोग देना है, जो विश्व संस्कृति की दृष्टि से मानवता के लिये महत्त्वपूर्ण हैं। इन स्थलों में वन क्षेत्र, पर्वत, झील, मरुस्थल, स्मारक, भवन या शहर आदि शामिल हैं और जिनका चुनाव सदस्य राष्ट्रों के प्रतिवेदन पर 'विश्व धरोहर समिति' द्वारा 'अंतर्राष्ट्रीय स्मारक और स्थल परिषद्' व 'विश्व प्रकृति संरक्षण संघ' की अनुशंसा पर किया जाता है। इसके अलावा सदस्य राष्ट्रों द्वारा प्रतिवेदित किसी संपदा को यूनेस्को के 'विश्व विरासत केंद्र' द्वारा पूर्व निर्धारित निम्नलिखित दस मानदंडों में से कम-से-कम एक पर खरा उतरना होता है-

1. मानव की रचनात्मकता का प्रतिनिधित्व करने वाली एक उत्कृष्ट कृति के रूप में प्रसिद्ध हो;
2. मानवीय मूल्यों के महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान का प्रदर्शन करने के लिये प्रसिद्ध हो;
3. एक सांस्कृतिक परंपरा या एक सभ्यता का विशिष्ट रूप से प्रतिनिधित्व करने के लिये जानी जाती हो;
4. इमारत वास्तु या तकनीक का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हो;
5. एक पारंपरिक मानव बस्ती, भूमि उपयोग या समुद्र के उपयोग का एक विशिष्ट उदाहरण हो, जो एक संस्कृति (या संस्कृतियों) का प्रतिनिधित्व करती हो अथवा मानवीय आदान-प्रदान को अभिव्यक्त करती हो;
6. घटनाओं अथवा जीवित परंपराओं, विचारों, मान्यताओं के साथ सार्वभौमिक महत्त्व की उत्कृष्ट कलात्मक या साहित्यिक कृतियों के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संबद्ध हो;
7. उत्कृष्ट प्राकृतिक घटना को समाहित किये हुए हो या असाधारण प्राकृतिक सौंदर्य तथा सौंदर्ययुक्त परिदृश्य के लिये प्रसिद्ध हो;
8. पृथ्वी के इतिहास के प्रमुख चरणों का प्रतिनिधित्व करने वाले स्थलों का उत्कृष्ट उदाहरण हो;
9. पृथ्वी पर जारी पारिस्थितिकी और जैविक प्रक्रियाओं का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हो;
10. विज्ञान या संरक्षण की दृष्टि से उत्कृष्ट सार्वभौमिक महत्त्व की संकटापन्न प्रजातियों सहित जैव-विविधता के स्व-स्थान संरक्षण के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व मूल्यवान प्राकृतिक वास-स्थलों को समाहित किये हुए हो।

यूनेस्को का विश्व विरासत केंद्र, तीन श्रेणियों यथा- सांस्कृतिक, प्राकृतिक और मिश्रित संपदा श्रेणी में किसी स्थल को वर्गीकृत करता है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग विश्व धरोहर सूची में शामिल किये जाने के लिये प्रतिवेदन भेजने हेतु, भारत की केंद्रीय एजेंसी है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा केंद्र सरकार, राज्य सरकारों व प्रबंधन ट्रस्टों से प्राप्त प्रतिवेदनों की समीक्षा के बाद तैयार फाइल को विश्व विरासत केंद्र भेज दिया जाता है। वर्तमान में भारत की कुल 38 संपदाएँ, जिनमें 30 सांस्कृतिक, 7 प्राकृतिक और 1 मिश्रित संपदा है, विश्व विरासत सूची में शामिल हैं।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन, (यूनेस्को) 'संयुक्त राष्ट्र संघ' का एक अनुषंगी निकाय है, जिसकी स्थापना नवंबर 1945 में लंदन में हुए सम्मेलन के दौरान की गई थी। वर्तमान में 193 देश इसके पूर्णकालिक सदस्य व 11 सहयोगी सदस्य हैं। इसका मुख्यालय पेरिस (फ्राँस) में स्थित है। संगठन विश्व भर में फैले अपने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व क्लस्टर कार्यालयों की सहायता से अपनी गतिविधियाँ संचालित करता है। भारत 4 नवंबर, 1946 से इसका पूर्णकालिक सदस्य है।

संगठन का उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्रों और समुदायों के मध्य सहयोग स्थापित कर वैश्विक शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये यूनेस्को सदस्य राष्ट्रों में शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक व मानव विज्ञान, संस्कृति, सूचना एवं संचार के क्षेत्र में तकनीकी एवं विशेषज्ञ सहायता कार्यक्रम, अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम, मीडिया तथा प्रेस की स्वतंत्रता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों का संचालन करता है। इसके अलावा यूनेस्को विभिन्न समुदायों के मध्य अंतर सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देने के लिये सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण को आवश्यक मानता है इसीलिये यूनेस्को

20 भारतीय संस्कृति से संबंधित विविध कानून
(Various laws relating to Indian Culture)

भूमिका

यद्यपि सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण व्यापक जनजागरूकता पर अधिक निर्भर करता है, किंतु इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विधान बनाकर राज्य भी इसमें अपनी भूमिका सुनिश्चित करे। यह इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि भारत जैसे देश में जहाँ इतनी सांस्कृतिक विविधता और समृद्धता है, वहाँ बिना सरकारी प्रयास के प्राचीन धरोहरों का प्रभावी संरक्षण संभव नहीं हो सकता। हमारा संविधान हमें यह अधिकार देता है कि हम अपनी विशिष्ट संस्कृतियों को बनाए रख सकें। अल्पसंख्यक वर्गों के प्रति विशेष प्रावधान किया गया है, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 में किया गया है। फिर राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि यह राज्य का दायित्व है कि वह सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण करे। साथ ही इसके संरक्षण का दायित्व हमारा मौलिक कर्तव्य भी है। इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद व अधिनियम निम्नांकित हैं:

संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार

- **अनुच्छेद 29:** भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।
- **अनुच्छेद 30:** धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
- भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्त्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 49 निर्देशित करता है कि राज्य राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करने का प्रयास करेगा।
- सांस्कृतिक धरोहर को बचाने के उद्देश्य से इसे मौलिक कर्तव्य के रूप में निरूपित किया गया है। अनुच्छेद 51क(च) निर्देशित करता है कि "हम सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझें और उसका परिरक्षण करें।"
- 20वीं सदी की शुरुआत में सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी विधायन का निर्माण किया। 1904 में 'प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम' पारित हुआ। इसका उद्देश्य मूलत: उन भवनों को संरक्षण प्रदान करना था, जो किसी निजी स्वामित्व के अधीन थे। चूँकि यह अधिनियम रद्द नहीं किया गया है। अत: इस अधिनियम में कई संशोधन होने के बाद आज भी लागू है।
- स्वतंत्रता के बाद जब अंग्रेज़ भारत छोड़कर जाने लगे तो वे अपने साथ वैसी चीज़ों को भी ले गए, जिनका कलात्मक व ऐतिहासिक महत्त्व था। इसके बाद भारत सरकार द्वारा 'पुरावशेष निर्यात नियंत्रण अधिनियम, 1947' पारित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसी प्रबंधनकारी व्यवस्था का निर्माण करना था, जिससे ये तय हो सके कि किन वस्तुओं को भारत से बाहर भेजा जाए और किन को नहीं।
- स्वतंत्रता के बाद ऐतिहासिक महत्त्व के स्मारकों व वस्तुओं के संरक्षण हेतु कई कानून बने। इस संदर्भ में 1951 में बने 'प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरातत्त्वीय स्थल एवं अवशेष (राष्ट्रीय महत्त्व की घोषणा) अधिनियम' अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। अब वैसे सभी प्राचीन व ऐतिहासिक स्मारक, पुरातत्त्वीय स्थल एवं अवशेष, जो 'प्राचीन स्मारक परिरक्षण अधिनियम, 1904' के तहत संरक्षित थे, उनको पुन: इस अधिनियम (1951) के अधीन राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित किया गया।
- उपरोक्त अधिनियम में व्याप्त कुछ कमियों के कारण वृहद् स्तर पर संरक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पा रहा था। इसको और अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से 1958 में 'प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम' पारित हुआ। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन व ऐतिहासिक स्मारकों तथा पुरातत्त्वीय स्थलों का परिरक्षण करने, पुरातात्त्विक उत्खननों का विनियमन करने तथा मूर्तियों, नक्काशियों एवं इस प्रकार की अन्य वस्तुओं का संरक्षण करना था। कालांतर में 'प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष नियम, 1959' बनाए गए तथा इसने 1951 में बने अधिनियम का स्थान लिया।
- पुरावशेषों तथा बहुमूल्य कलाकृतियों वाली सांस्कृतिक संपदा के लाने, ले जाने पर प्रभावी नियंत्रण रखने के उद्देश्य से 'पुरावशेष तथा बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972' पारित हुआ। यह अधिनियम पुरावशेषों तथा बहुमूल्य कलाकृतियों के निर्यात को विनियमित करता है, पुरावशेषों की तस्करी और उसमें धोखाधड़ी को रोकने की व्यवस्था करता है तथा सार्वजनिक स्थलों में पुरावशेषों व बहुमूल्य कलाकृतियों के अनिवार्य अधिग्रहण की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं–
  1. ऐसी कोई भी वस्तु, पत्थर की मूर्ति, धातु, पांडुलिपि इत्यादि जिसका उत्पादन 100 वर्ष या इससे अधिक वर्ष पूर्व हुआ हो, 'पुरावशेष' कहलाता है।
  2. अगर कोई व्यक्ति सरकार की अनुमति के बिना इन पुरावशेषों का निर्यात करता है तो यह कृत्य अवैध माना जाएगा।
- 1993 में 'सार्वजनिक अभिलेख अधिनियम, 1993' पारित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य सार्वजनिक हित में अभिलेखों को स्थायी रूप से संरक्षित रखना है।

21 सम्मान एवं पुरस्कार
(Honour and Awards)

भूमिका

भारतीय गणराज्य अपने नागरिकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किये गए उत्कृष्ट सृजन व राष्ट्र एवं समाज के प्रति उनके द्वारा दिये गए अमूल्य योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्हें सम्मानित करता है। प्रतिवर्ष ये सम्मान कला, सामाजिक सेवा, लोक सेवा, विज्ञान, चिकित्सा, साहित्य, खेल-कूद आदि क्षेत्रों में प्रदान किये जाते हैं। इसके अलावा राष्ट्र उन विदेशी नागरिकों को भी सम्मानित करता है जिन्होंने अन्य राष्ट्रों के साथ भारत के संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में महती भूमिका निभाई हो और भारतीय कला-संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग रखते हुए उसके देश-विदेश में प्रचार-प्रसार व संवर्द्धन में अमूल्य योगदान दिया हो। भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मान एवं पुरस्कार निम्नलिखित हैं-

भारत रत्न

'भारत रत्न', भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान है, 1954 में स्थापित यह सम्मान किसी भी क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि व असाधारण सेवा के लिये प्रदान किया जाता है। एक वर्ष में अधिकतम तीन लोगों को (1999 में चार लोगों को दिया गया) यह पुरस्कार प्रदान किया जा सकता है, जिसकी सिफारिश स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रपति को की जाती है। सम्मान में व्यक्ति को राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाण-पत्र और एक पदक प्रदान किया जाता है। पीपल के पत्ते के आकार के काँसे के बने पदक के एक ओर प्लेटिनम का बना उगता सूर्य जिसके नीचे देवनागरी लिपि में 'भारत रत्न' लिखा होता है व दूसरी ओर प्लेटिनम का बना भारत का राष्ट्रीय प्रतीक उकेरा गया होता है। अन्य अलंकरणों के समान इस सम्मान को भी नाम के साथ पदवी के रूप में नहीं प्रयोग किया जा सकता। भारत रत्न अलंकरण से सम्मानित व्यक्ति केन्द्र सरकार की वरीयता सूची में 7A स्थान पर आते हैं। सन् 2019 तक कुल 48 लोगों को यह सम्मान प्रदान किया गया है, जिसमें 14 व्यक्तियों को यह पुरस्कार मरणोपरांत दिया गया। खान अब्दुल गफ्फार खाँ (1987) व नेल्सन मंडेला (1990), वे दो विदेशी व्यक्ति हैं जिन्हें भारत रत्न अलंकरण से सम्मानित किया गया है।

भारत रत्न, पद्म अलंकरण व अन्य पदक 'भारत प्रतिभूति मुद्रण तथा मुद्रा निर्माण निगम लिमिटेड' की कोलकाता स्थित टकसाल में निर्मित किये जाते हैं।

भारत रत्न से सम्मानित व्यक्ति

वर्ष	नाम
1954	चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ. चंद्रशेखर वेंकट रमन
1955	डॉ. भगवान दास, डॉ. मोक्षगुंडम विश्वेश्वरैया, पण्डित जवाहरलाल नेहरू
1957	पंडित गोविंद बल्लभ पंत
1958	डॉ. धोंडो केशव कर्वे
1961	डॉ. बिधानचंद्र रॉय, पुरुषोत्तम दास टंडन
1962	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
1963	डॉ. ज़ाकिर हुसैन, डॉ. पी.वी. काणे
1966	लाल बहादुर शास्त्री (मरणोपरांत)
1971	श्रीमती इंदिरा गांधी
1975	वी.वी. गिरि
1976	के. कामराज (मरणोपरांत)
1980	मदर टेरेसा
1983	आचार्य विनोबा भावे (मरणोपरांत)
1987	खान अब्दुल गफ्फार खाँ
1988	एम.जी. रामचन्द्रन (मरणोपरांत)
1990	भीमराव अंबेडकर (मरणोपरांत), नेल्सन मंडेला
1991	राजीव गांधी (मरणोपरांत), सरदार वल्लभभाई पटेल (मरणोपरांत), मोरारजी देसाई
1992	मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (मरणोपरांत), जेआरडी टाटा, सत्यजीत रे
1997	गुलजारीलाल नंदा, अरुणा आसफ अली (मरणोपरांत), एपीजे अब्दुल कलाम
1998	एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी, सी. सुब्रमणियम
1999	जयप्रकाश नारायण (मरणोपरांत), अमर्त्य सेन, गोपीनाथ बारदोलोई (मरणोपरांत), पंडित रविशंकर
2001	लता मंगेशकर, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ
2009	पंडित भीमसेन जोशी
2014	सी.एन.आर. राव, सचिन तेंदुलकर
2015	अटल बिहारी वाजपेयी, पंडित मदन मोहन मालवीय (मरणोपरांत)।
2019	नानाजी देशमुख (मरणोपरांत), भूपेंद्र कुमार हज़ारिका (मरणोपरांत), प्रणब मुखर्जी

22 कैलेंडर एवं पंचांग
(Calendar and Panchang)

भूमिका

मानव सभ्यता की शुरुआती अवस्था में हमारे पूर्वजों ने ध्यान दिया कि कुछ प्राकृतिक घटनाएँ एक निश्चित चक्रीय प्रक्रम में निरंतर दोहराई जाती हैं। जैसे- सूर्योदय के साथ दिन और सूर्यास्त के साथ रात का होना। उन्होंने देखा कि कैसे रात में चंद्रमा के आकार में परिवर्तन होता है तथा कैसे निश्चित समय बीतने के साथ ऋतुओं में परिवर्तन होता है और इन्हीं परिवर्तनों की वजह से बसंत, ग्रीष्म, पतझड़ व शीत ऋतुएँ क्रमश: एक के बाद एक आती हैं।

अब चूँकि ऋतुओं में होने वाले इस चक्रीय परिवर्तन का ज्ञान मानव के कृषि कार्यों यथा- बीज बोने, सिंचाई व फसल कटाई के लिये आवश्यक था। अत: एक ऐसी प्रणाली की आवश्यकता महसूस की गई, जिसकी सहायता से ऋतुओं में परिवर्तन का हिसाब-किताब रखा जा सके। इसके अलावा धार्मिक कार्यों, व्यापार-वाणिज्य, प्रशासनिक कार्यों एवं दिन-प्रतिदिन के सामान्य कामकाज के लिये भी समय का हिसाब रखना आवश्यक हो गया था। इन्हीं आवश्यकताओं के चलते विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में कैलेंडर का विकास हुआ।

विश्व के विभिन्न कैलेंडर पृथ्वी, चंद्रमा और सूर्य की गतियों पर आधारित हैं। पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूर्णन से दिन-रात होते हैं, पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने में जितना समय लगता है, उसे एक वर्ष की संज्ञा दी जाती है।

कैलेंडर के बारे में जानकारी प्राप्त करने से पूर्व हमारे लिये पृथ्वी, चंद्रमा व सूर्य से संबंधित निम्नलिखित संकल्पनाओं की जानकारी आवश्यक है-

भूमध्यरेखा

भूमध्यरेखा पृथ्वी की सतह पर उत्तरी ध्रुव एवं दक्षिणी ध्रुव से समान दूरी पर स्थित एक काल्पनिक रेखा है। यह पृथ्वी को उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध में विभाजित करती है। भूमध्यरेखा पर वर्ष भर दिन-रात बराबर होते हैं। इसे विषुवत रेखा भी कहा जाता है। इसके $23\frac{1}{2}^\circ$ उत्तर व दक्षिण में क्रमश: कर्क रेखा और मकर रेखा स्थित है। पृथ्वी अपने अक्ष पर $23\frac{1}{2}^\circ$ झुकी हुई है और यह इसी अवस्था में सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करती है। इस झुकाव के कारण ही सूर्य की किरणें कर्क रेखा से मकर रेखा तक एवं पुन: मकर रेखा से कर्क रेखा तक चलती हुई प्रतीत होती हैं।

विषुव

विषुव वर्ष की उन दो स्थितियों की ओर इंगित करता है जब सूर्य भूमध्यरेखा पर लंबवत् चमकता है। इस स्थिति में पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों पर दिन-रात की अवधि समान होती है। इन स्थितियों को ही 'विषुव' कहा जाता है। सूर्य 21 मार्च (बसंत विषुव) एवं 23 सितंबर (शरद या पतझड़ विषुव) को भूमध्यरेखा या विषुवत रेखा पर लंबवत् चमकता है।

अयनांत

पृथ्वी अपने अक्ष पर $23\frac{1}{2}^\circ$ झुकी हुई दीर्घ वृत्ताकार (Elliptical) कक्षा में सूर्य का परिक्रमण करती है, ऐसे में सूर्य की किरणें भूमध्यरेखा से उत्तर व दक्षिण की ओर चलती हुई प्रतीत होती हैं। सूर्य 21 जून को कर्क रेखा ($23\frac{1}{2}^\circ$ उत्तरी अक्षांश) पर लंबवत् चमकता है, इस स्थिति को 'ग्रीष्म संक्रांति' या 'ग्रीष्म अयनांत' कहा जाता है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में अधिकतम गर्मी पड़ती है। इसके विपरीत 22 दिसंबर को सूर्य मकर रेखा ($23\frac{1}{2}^\circ$ दक्षिणी अक्षांश) पर लंबवत् चमकता है, इस स्थिति को **'मकर संक्रांति' या 'शीत अयनांत'** कहा जाता है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु।

खगोलीय भूमध्यरेखा

खगोलीय भूमध्यरेखा वह काल्पनिक रेखा है, जो पृथ्वी की भूमध्यरेखा के ठीक ऊपर आकाश में स्थित होती है; दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि खगोलीय भूमध्यरेखा पृथ्वी की भूमध्यरेखा का आकाश या अंतरिक्ष में प्रक्षेपण है।

क्रांतिवृत्त या सूर्यपथ

क्रांतिवृत्त या सूर्यपथ अंतरिक्ष में तारों या नक्षत्रों के सापेक्ष सूर्य की वर्ष भर की गति को प्रदर्शित करता है। वृत्ताकार यह पथ खगोलीय भूमध्यरेखा के समान नहीं है बल्कि यह खगोलीय भूमध्यरेखा के साथ $23\frac{1}{2}^\circ$ का कोण बनाता है। क्रांतिवृत्त, खगोलीय भूमध्यरेखा को जिन दो बिंदुओं पर काटता है, वही बिंदु **'बसंत विषुव' व 'शरद विषुव'** कहलाते हैं। इस समय सूर्य ठीक खगोलीय भूमध्यरेखा यानी पृथ्वी की भूमध्यरेखा के ऊपर स्थित होता है। जिन दो बिंदुओं पर क्रांतिवृत्त खगोलीय भूमध्यरेखा से सर्वाधिक दूरी पर होता है तब ऐसी स्थिति को ग्रीष्म अयनांत एवं शीत अयनांत कहा जाता है, ये स्थितियाँ क्रमश: ग्रीष्म एवं शीत ऋतु के प्रारंभ की द्योतक होती हैं।

खगोलीय गोला

खगोलीय गोला पृथ्वी के इर्द-गिर्द एक काल्पनिक गोला है। पृथ्वी से अंतरिक्ष की ओर देख रहे व्यक्ति के लिये यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है कि सभी खगोलीय पिंड ग्रह, तारे आदि इसी खगोलीय गोले की अंदरूनी सतह पर जड़े हुए हैं। इस काल्पनिक खगोलीय गोले के उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव एवं इसकी भूमध्यरेखा, पृथ्वी के ध्रुवों व भूमध्यरेखा के ठीक ऊपर स्थित है।

घर बैठे IAS/PCS की संपूर्ण तैयारी करने के लिये आपका स्वागत है

Drishti Learning App

पर

GET IT ON Google Play

अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

ऐप की विशेषताएँ

- टीम दृष्टि द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएँ एक ही मंच पर।
- ऑनलाइन, पेनड्राइव मोड में कक्षाएँ उपलब्ध।
- प्रिलिम्स और मेन्स की टेस्ट सीरीज़ भी ऐप के माध्यम से उपलब्ध।
- सभी पुस्तकें, मैगजीन, डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम के नोट्स देखने व मंगवाने की सुविधा।

ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

- घर बैठे देश के सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों से पढ़ने की सुविधा।
- अब दिल्ली या किसी बड़े शहर जाकर पढ़ने की मजबूरी नहीं।
- IAS और PCS के कोर्स उपलब्ध।
- ऑनलाइन कोर्स करने के बाद, क्लासरूम कोर्स में प्रवेश लेने पर शुल्क में विशेष छूट।
- हर क्लास अपनी सुविधा से 3 बार देखने की सुविधा।
- उत्तर लिखकर चेक कराने तथा संदेह-समाधान की व्यवस्था भी शीघ्र उपलब्ध।
- कई विषयों के कोर्स ऑनलाइन और पेनड्राइव मोड में भी उपलब्ध।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली शाखा) का पता
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
8448485519, 87501 87501, 011-47532596

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज शाखा) का पता
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि आई.ए.एस. (राजस्थान शाखा) का पता
प्लॉट नंबर-45 व 45-A, हर्ष टावर-2, मेन टोंक रोड़, वसुंधरा कॉलोनी, जयपुर राजस्थान-302018
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि पब्लिकेशन्स की प्रमुख पुस्तकें

641, 1st Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-110009
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-93-90955-11-4

मूल्य : ₹ 380